प्रस्तावना

प्राकृतिक चिकित्सा महँगी पड जाती है, ऐसा आक्षेप बार-बार किया जाता है। इसका जवाब चौथे प्रकरण में संक्षेप में दिया गया है। इसे पाठकगण ध्यान से पढ़ें, ऐसी मेरी सूचना है। इतना ध्यान में रखा जाय कि उपवास, मिट्टी, पानी, धूप और आहार में योग्य परिवर्तन, यही प्राकृतिक उपचारों का स्वरूप है। इसमें ज्यादा खर्च का सवाल पैदा ही नहीं होता। इसके अतिरिक्त रोग को रोकना प्राकृतिक चिकित्सा का मुख्य अंग होने से यह उपचार-पद्धति कभी खर्चीली नहीं हो सकती। यदि यह उपचार-पद्धति खर्चीली होती, तो इस कार्य मे गांधीजी कभी नहीं पड़ते, यह निस्संदेह समझिये। मगर इस चीज का दर्शन अभी हम जनता को नहीं करा सके हैं, यह अफसोस की बात है। निकट भविष्य में जब हम देहातों में इस काम को शुरू करेंगे, तब इस चीज का दर्शन कराने की हमें उम्मीद है।

निसर्गोपचार आश्रम,
उरुलीकांचन जि० पूना
ता० ११-६-'५७

—बालकोबा भावे

अनुक्रम

———

प्राकृतिक चिकित्सा क्यों ?

गांधीजी और प्राकृतिक चिकित्सा : १ :

प्राकृतिक चिकित्सा का महान् प्रयोग करने की आवश्यकता गांधीजी को क्यों महसूस हुई, यह हमें देखना है।

हिन्दुस्तान के सब शहरों में काफी संख्या में सरकारी अस्पताल चल रहे हैं। इसके अतिरिक्त निजी दवाखाने भी चल रहे हैं। इसके लिए हर साल परदेश से दो करोड़ रुपये की दवाएँ हिन्दुस्तान में आ रही हैं। हर साल असंख्य डॉक्टर मेडिकल कॉलेजों से डिग्री पाकर बाहर निकल रहे हैं। आयुर्वेद के दवाखाने भी जगह-जगह चल रहे हैं। होमियोपैथी का प्रचार भी ठीक-ठीक हो रहा है। ऐसी हालत में प्राकृतिक चिकित्सा की आवश्यकता ही कहाँ ? देहात के आरोग्य का प्रश्न हल करना हो, तो देहातों में ऐलोपैथी या आयुर्वेद के दवाखाने क्यों न शुरू किये जायँ और देहाती जनता का आरोग्य क्यों न सुधारा जाय ? फिर प्राकृतिक-चिकित्सा के प्रयोग की जरूरत नहीं रहेगी। मगर गांधीजी जब इस विषय में सोचने लगे, तब उनके ध्यान में आया कि ऐलोपैथी या आयुर्वेद या होमियोपैथी के कितने ही अस्पताल क्यों न खड़े किये जायँ, फिर भी दवाओं से रोग मिटाने की पद्धति के मूलभूत दोष जब तक दूर नहीं होते, तब तक देहाती जनता का आरोग्य सुधारने में इन 'पैथियों' का उपयोग नहीं के बराबर होगा, इसमें सन्देह नहीं। उदाहरण-

स्वरूप कोई मलेरिया का रोगी इन अस्पतालों में उपचार के लिए चला जाय, तो डॉक्टर उसको इंजेक्शन या कुनैन की गोलियाँ देकर उसका बुखार तत्काल उतार देगा, लेकिन पूरा नहीं उतरेगा। दुबारा बुखार आने पर फिर से वही इजेक्शन और गोलियाँ दी जायँगी। सदा के लिए मलेरिया का बुखार न आये, इसके लिए क्या-क्या करना चाहिए, खान-पान मे क्या सुधार करना चाहिए, इसका ज्ञान रोगी को डॉक्टर नहीं कराता। इसकी तरकीब रोगी को नहीं बतायी जाती। मलेरिया का बुखार क्यो आता है, उसका कारण क्या है, उसे किस तरह दूर किया जा सकता है, इसका ज्ञान रोगी को जब तक नहीं कराया जाता, तब तक चाहे जितने अस्पताल खड़े किये जायँ, लोग रोगमुक्त नहीं हो सकेंगे। रोग-प्रतिवधक ज्ञान प्राप्त होने पर भी यदि संयम का अभ्यास न हो, तो भी रोग को नहीं रोक सकते। ज्ञान को प्रत्यक्ष व्यवहार में लाने के लिए सयम की आवश्यकता होती है। ज्यादा खाने से बदहजमी होगी। ऐसा ज्ञान होने पर भी सयम का अभ्यास न हो, तो बदहजमी को नहीं टाल सकते। इसलिए देहात के लोग रोग के शिकार न बनें, ऐसा यदि हम चाहते हैं, तो ज्ञान के साथ सयम का अभ्यास कराने का लक्ष्य हमको रखना होगा। देहातो मे छोटे छोटे केन्द्र खोले जायँ, उनके द्वारा जनता का ज्ञान और सयम सिखाया जाय, तो वे केन्द्र कुछ हद तक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। ऐलोपैथी, आयुर्वेद और होमियोपैथी आदि पद्धतियो से उपर्युक्त कार्य सिद्ध होना शक्य न लगने से गांधीजी प्राकृतिक चिकित्सा की ओर झुके।

अब यदि मलेरिया का रोगी किसी प्राकृतिक चिकित्सालय मे उपचार के लिए जाता है, तो वहाँ पर उपचार का क्या स्वरूप रहेगा यह देखिये। जब तक बुखार है, तब तक उसे भोजन

नहीं दिया जायगा। उपवास-काल में गरम पानी में थोड़ा नीबू का रस या इमली का रस डालकर दिन मे ५-६ बार दिया जायगा। बड़ी आँतो मे एकत्र मल बाहर निकालने के लिए नित्य एनिमा दिया जायगा। जिस दिन बुखार न आवे, उस दिन मोसंबी का थोड़ा रस उसे दिया जायगा। जुलाब के लिए एक दिन रेंडी का तेल दिया जायगा। इस तरह दवा का उपयोग न करते हुए मलेरिया निर्मूल करने का प्रयत्न किया जायगा। बुखार उतरते ही थोड़ी छाछ से आरम्भ करके धीरे-धीरे आहार पर उसे लाया जायगा। कौन-सी चीज कितने परिमाण मे, किस तरह खाना, यह उसे बतलाया जायगा। पेट मे मल काफी भरा रहने से रोग की उत्पत्ति होती है, इसलिए पेट हमेशा साफ रखना कितना जरूरी है, यह उसको मालूम हो जायगा। नित्य कड़वे नीम के पत्ते का रस पानी मे मिलाकर लेने से मलेरिया को रोकने मे सहायता मिलती है, यह उसे कहा जायगा। उसकी समझ में आवे, तो इस तरह आहार-शास्त्र का ज्ञान, दाँत साफ किस तरह रखना, सूर्य-किरणों से शरीर को होनेवाला लाभ, ठण्डी और गर्म मिट्टी की पट्टी, वाष्प-स्नान आदि सर्वसुलभ उपचारों की उसे जानकारी करायी जायगी। इस तरह रोगी को रोगमुक्त होने के प्रयत्न मे काफी ज्ञान दिया जायगा और संयम की शिक्षा भी दी जायगी।

डॉक्टर, वैद्य या हकीम ज्ञान या संयम न सिखाकर केवल दवाएं देकर रोग हटाने की कोशिश करते हैं। उसमें और एक दोष यह रहा है कि आरोग्य के सम्बन्ध मे रोगी को डॉक्टर या वैद्य स्वावलम्बी बनाने के बजाय हमेशा परावलम्बी यानी डॉक्टरावलम्बी या औषधावलम्बी रखते हैं। अन्न, वस्त्र, घर, शिक्षण, आरोग्य, न्याय और रक्षण, इन सात बातों मे जो समाज स्वावलम्बी रहेगा, वह अत्यन्त सुखी होगा। अन्न व घर के बारे

में देहाती लोग स्वावलम्बी हैं, वस्त्र के बारे में परावलम्बी हैं। शिक्षण, न्याय और रक्षण के बारे में अभी पूरे स्वावलम्बी नहीं बने हैं। आरोग्य के बारे में स्वावलम्बी बनना अभी बाकी है। प्राकृतिक चिकित्सा के आधार से देहाती समाज आरोग्य के बारे में स्वावलम्बी बन सकता है, इस श्रद्धा से गाधीजी इस काम में पडे।

अब हम प्राकृतिक चिकित्सा का स्वरूप देखें। ● ● ●

प्राकृतिक चिकित्सा का दुहरा स्वरूप : २ :

प्राकृतिक चिकित्सा मे दो बातों का समावेश है · (१) रोग होने न देना, यानी रोगप्रतिबधक गुण, (२) रोग होने पर बिना दवा लिये प्राकृतिक उपचारों से रोगमुक्त होना यानी रोग-निवारक गुण। पहली बात निसर्गोपचार की आत्मा है। निसर्गोपचारक अपना सारा दारोमदार इसी पर रखते है। इसमें सफलता मिलने पर प्राकृतिक चिकित्सा का प्रयोग सफल हुआ, ऐसा वे मानते हैं। इसमे यश मिलने पर दूसरे में यश मिलेगा ही, ऐसा वे विश्वास रखते हैं। कारण, रोग को रोकना जिन्हें सध गया, उनको आहार-विहार और उपचार का इतना ज्ञान हासिल होगा, इतना सयम सध जायगा, मनोबल भी इतना बढ़ेगा कि दुर्भाग्य से किसी कारणवशात् वह बीमार हो भी जाय, तो भी थोड़े प्राकृतिक उपचार से वह उससे सहज ही में मुक्त हो जायगा।

इस तरह रोग को रोकना, जो निसर्गोपचार की आत्मा है—जो निसर्गोपचार की मुख्य चीज है—उसे साधने के लिए क्या-क्या करना चाहिए, उसे अब हम देखे।

रोग का रोकना यह मुख्यतः स्थल-शुद्धि, देह-शुद्धि और चित्त-शुद्धि, इन तीन बातो पर अवलम्बित है।

स्थल-शुद्धि

जिस जगह हम रहते हैं, उसके आसपास गन्दगी नहीं होनी चाहिए। कचरे के लिए रखे वर्तन मे कचरा डालना चाहिए। घरों की नालियों का पानी रास्ते पर से न बहकर नीचे से जाना चाहिए। रास्ते पर पेशाब नहीं करना चाहिए। घर के हर कमरे मे स्वच्छता होनी चाहिए। दिन मे कमरे के दरवाजे, खिड़कियाँ खुली रखनी चाहिए। कमरो मे सूर्य-प्रकाश आना चाहिए। संडास, पेशाब-घर मे बदबू न आनी चाहिए। रात को सोते वक्त खिड़कियाँ खुली रखनी चाहिए, ताकि भीतर हवा बराबर आती रहे।

देह-शुद्धि

रोज सुबह उठते ही बराबर मुँह धोना चाहिए। दातुन से दाँत साफ करने का रिवाज अच्छा है। बाद मे २० से ३० तोला गरम या ठण्डे पानी मे नमक या दो तोला शहद या गुड़ डालकर उसमे थोड़ा नींबू का रस, इमली का रस मिलाकर लेना ठीक है। स्नान करते समय खुरदरे कपड़े से हरएक अवयव को घिसना चाहिए। साबुन जरूरी नहीं है। कपड़े स्वच्छ पानी से रोजाना धोये जायँ, तो साबुन लगाने की जरूरत ही नहीं पड़ती। भोजन करने के बाद या कोई भी चीज खाने के बाद पानी से मुँह स्वच्छ करने की आदत डालनी चाहिए। रात को सोते समय स्वच्छ पानी से मुँह धो डालना चाहिए। सोते समय ओढ़ने की चादर नाक पर ढंककर ओढ़ना नहीं चाहिए। नाक खुली रहने से फेफड़ों को शुद्ध हवा मिलती है, जो उसकी खुराक है। शुद्ध करने का काम फेफड़े सतत करते

रहते हैं। उनको शुद्ध हवा मिलने पर ही वे अपना काम ठीक-ठीक कर सकते हैं। बीड़ी पीने का व्यसन छोड़ना चाहिए, इससे फेफड़े बिगडते हैं। अब तो डॉक्टरों को यह खोज है कि सिगरेट से फेफडों का कैन्सर होता है। सुबह उठने के बाद टट्टी साफ होती है या नहीं, यह हमेशा देखते रहना चाहिए। विनोबाजी कहते हैं *"प्रभाते मलदर्शनम्"*। सुबह यदि हम अपनी टट्टी को ज्ञान-पूर्वक देखने की आदत डालें, तो उस दिन का आरोग्य कैसा है, यह बराबर ध्यान में आयगा, और उसके अनुसार उस दिन का आहार हम निश्चित कर सकते हैं। टट्टी पतली होने पर उस दिन आहार कम लेना चाहिए। सारक चीजें न लेकर अवरोधक चीजें उस दिन ले सकते हैं। मल का अवरोध होने पर सारक चीजें उस दिन ज्यादा लेनी चाहिए। मुख्य वस्तु शुद्धि की है। हम जो आहार लेते हैं, उसमें कुछ आहार शरीर की गठन करनेवाला रहता है। कोई शरीर शुद्धि रखने मे मदद करनेवाला रहता है। शौच को साफ करनेवाली पत्ता भाजी और सलाद भोजन मे होना चाहिए। जो लोग उचित मात्रा मे भाजी नहीं लेते, उनके शरीर में क्षार की कमी होने से उनका खून शुद्ध नहीं रह सकता। हममे से ९९ फी सदी लोगों को ज्यादा खाने की आदत रहती है। उसका मुख्य कारण यह है कि चर्वण करके खाने की हमे आदत नहीं होती। जल्दी-जल्दी खाने की जिनको आदत रहती है, उनको ज्यादा खाये बिना समाधान नहीं होता। मगर ठीक तरह चबाकर खाने की आदत डालने से लार अधिक घुल-मिल जाने से रुचि अधिक पैदा होगी, और उससे तृप्ति होने स ज्यादा नहीं खाया जा सकेगा। भोजन मे परिमितता के साथ-साथ नियमितता भी होनी चाहिए। भोजन सात्त्विक होना चाहिए। मिर्च का यदि पूर्ण त्याग नहीं कर सकते हैं, तो हरी मिर्च अति अल्प प्रमाण मे सेवन की जाय, ताकि जठर की

अंतस्त्वचा को नुकसान न पहुँचे। तली चीजों का त्याग करना ही ठीक है। त्योहार के दिन मिष्टान्न भोजन करना हो, तो निर्दोष मिष्टान्न बनाया जाय। मिष्टान्न कम प्रमाण में खाना चाहिए। दोपहर को मिष्टान्न भोजन लिया हो, तो शाम को भोजन न करके सिर्फ छाछ ली जाय। हर १५ दिन के बाद एकादशी रखनी चाहिए। फिलहाल एकादशी को हमने बिगाड़ दिया है। उस दिन मूँगफली जैसी हजम होने मे भारी चीजे न लेकर सिर्फ पानी मे नीबू या इमली का रस डालकर और उसमे थोड़ा शहद या गुड़ मिलाकर ४-५ दफा लेना चाहिए। साथ मे ५-६ सन्तरे दिनभर मे ले सकते हैं।

हम सब चक्की का आटा खाने के आदी हो गये हैं। गेहूँ के ऊपरी भाग मे जो जीवन-सत्त्व और लोहा रहता है, वह सारा चक्की के आटे मे जल जाता है। इससे शरीर को उचित मात्रा मे जीवन-सत्त्व न मिलने से शरीर की जीवन-शक्ति आहिस्ता-आहिस्ता घट जाती है. शरीर रोग का शिकार जल्दी बन सकता है। इसलिए हाथ से आटा पिसवाकर उसकी छनी हुई थूली उसीमें मिलाकर रोटी बनवानी चाहिए। थूली से दस्त साफ होगा। अस्सी फी सदी रोग कब्ज के कारण होते है, यह ध्यान मे रखना चाहिए। भोजन करते समय पानी बहुत कम पीना चाहिए। भोजन करने के पहले आध घण्टा पानी पी लेने से भोजन करते वक्त पानी पीने की जरूरत नहीं रहेगी। रोटी के साथ चावल खाना गांधीजी ने हमें सिखाया था। उससे चावल चबाया जाता है। दिन मे कुछ कसरत भी कर लेनी चाहिए। घूमने की कसरत अच्छी है। आसनादि भी किये जायँ, तो ठीक।

चित्त-शुद्धि

मन पर हमारा काबू नहीं रह पाता। मन हमेशा काम, क्रोध आदि के अधीन रहता है। चित्त मे कोई भी विकार पैदा

हो, तो उसका शरीर पर बुरा असर पडता ही है। गुस्सा आने से हृदय की गति बढ जाती है और धडकन शुरू होती है, हाथ-पॉव कॉपने लगते हैं, खून में अम्लता बढ़ने लगती है, खून शुद्ध नहीं रह पाता। शुद्ध खून क्षारमय रहता है। चित्त हमेशा शान्त रहे, तो खून शुद्ध यानी क्षारमय रह सकता है। मन में चिन्ता या डर पैदा होने से भूख एकाएक कम हो जाती है, यह नित्य के अनुभव की बात है।

प्राचीन काल मे ऋषियों ने चार आश्रमों की योजना की थी। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यास, इन तीन आश्रमो में ब्रह्मचर्य का पालन तो सहज ही हो जाता है। सृष्टि-चक्र चालू रहने के लिए बीच में थोडा-सा गृहस्थाश्रम रख दिया गया। वह मर्यादित रहना चाहिए, ऐसा शास्त्रकारो ने तय किया है। मगर फिलहाल हम शास्त्रकारों के अनुसार नहीं चलते हैं। इसमे हम काफी नीचे उतर गये हैं। दो या तीन से ज्यादा सन्तान पैदा न हो, यह लक्ष्य हमें रखना चाहिए। यह चीज सयम से सधनी चाहिए, कृत्रिम उपायो से सतति-नियमन करके नहीं। दो या तीन सतान होने के बाद वानप्रस्थाश्रम मे प्रवेश करना चाहिए। दो या तीन के बदले चार की मर्यादा निश्चित कर सकते हैं, मगर सकल्पपूर्वक कुछ निश्चित करके हम चलते हैं, तो हमारा मनोबल दिनोदिन बढेगा। वीर्य-सग्रह से जैसे मनोबल बढेगा, वैसे शरीर-बल भी बढ़ेगा। काम-क्रोधादि विकारों के अधीन रहने से चित्त की सात्त्विकता कम होती है और रजोगुण तथा तमोगुण बढ़ता है। दोनो के बढने से स्वार्थ, दूसरों का नुकसान करना, झगडा करना आदि आसुरी वृत्तियॉ पनपने लगती हैं और इन वृत्तियो से शरीर का तेज कम होने लगता है।

स्थल-शुद्धि, देह-शुद्धि और मन-शुद्धि जहॉ तक सध जायॅ, उतना ही हम रोगो को रोक सकते हैं।

रोगों को रोकने के प्रयत्नों के बावजूद भी हम कभी बीमार हो जायँ, तो क्या करना चाहिए, यह अब थोड़े में देखें।

बदहजमी हो जाय, बुखार आये, जुकाम हो जाय, न्यूमोनिया या इन्फ्लुएंजा हो जाय, तो जब तक रोग के लक्षण प्रकट रहते हैं, तब तक सादा पानी का उपवास करना चाहिए। उपवास-काल में बहुत कमजोरी महसूस हो, तो नीबू-पानी अथवा उसमें थोड़ा शहद या गुड़ डालकर तीन-चार दफा ले सकते हैं, या काली मुनक्का भिगोकर उसका रस पानी में मिलाकर दो-तीन दफा ले सकते हैं। उपवास के दरम्यान एनिमा लेना चाहिए। लक्षण शांत होने के बाद उपवास छोड़ते समय बहुत सँभलना चाहिए। पहले दिन मूँग का या भाजी का पानी और थोड़ा संतरे या मोसम्बी का रस ही लेना चाहिए। दूसरे दिन थोड़ा दूध ले सकते हैं, साथ में संतरे या मोसम्बी। इस तरह आहिस्ता-आहिस्ता खुराक पर आना चाहिए। बुखार ज्यादा हो, तो चार दफा स्नान कर सकते हैं। दोपहर को पेड़ू पर ठण्डी मिट्टी की पट्टी रखने से लाभ होगा। पेट में वायु हो, दर्द होता हो, तो रात को गरम मिट्टी की पुलटिस रख सकते हैं। बुखार उतर जाने के बाद सुबह नियमित रूप से सारे शरीर पर धूपस्नान लेना चाहिए। इन सब उपचारों में उपवास रामबाण दवा है। उपवास मानो चमत्कार ही है। उपवास किस प्रकार और कितने दिन का करना चाहिए, यह शरीर की जीवन-शक्ति पर निर्भर है।

●●●

ऑपरेशन

: ३ :

जरा-जरा बात मे आजकल ऑपरेशन की सलाह दी जाती है। यह अच्छी बात नही है। खासकर टॉन्सिल के कई ऑपरेशन टाले जा सकते हैं। टॉन्सिल गले के प्रवेश-द्वार की महत्त्वपूर्ण ग्रंथि है। प्रवेश-द्वार के सरक्षण का उसे एक किला ही समझना चाहिए। छुटपन में इस ग्रन्थि को ज्यादा काम करना पड़ता है, इस कारण वहाँ पर बार-बार सूजन आती है। बच्चो की नाक हमेशा भरी रहती है, जिससे मुँह खुला रहने से बाहर की ठण्डी हवा गर्म न होकर भीतर घुसती है। वह ठण्डी हवा फिल्टर न होकर सीधी घुसने के कारण मुँह में प्रवेश करनेवाले जन्तुओं के साथ उस ग्रन्थि को झगडना पडता है, उससे वहाँ पर सूजन आती है। इसके साथ पेट साफ न रहने के कारण शरीर मे विष-द्रव्य बढने से उस जगह पर पीप शुरू होती है। इससे बच्चो को जुकाम, खाँसी और जोर से बुखार आता रहता है। इस हालत मे डॉक्टर ऑपरेशन की सलाह देता है। ऑपरेशन से यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थि निकाल देने पर सर्दी या गर्मी बरदाश्त करने की शरीर की क्षमता कम हो जाती है।

टॉन्सिल का एक मजेदार केस हमारे पास आया था। १४ साल की लडकी थी। डॉक्टर ने टॉन्सिल के ऑपरेशन की सलाह दी थी। जब वह हमारे पास आयी, तब उसे बुखार आता था, मुँह पर सूजन थी, नाक बद थी और मुँह से श्वास लेनी पडती थी। चार दिन सिर्फ पानी पर उसे रखा गया, बाद मे सात दिन मोसंबी पर रखा। रोज १२ मोसंबी दी जाती थी। ११ दिन मे उसका बुखार उतर गया, सूजन उतर गयी। गरम पानी मे नमक डालकर रोज नाक से ऊपर चढ़ाने का क्रम रखने से नाक खुल गयी और मुँह बंद रहने लगा। रात को गरम मिट्टी की पट्टी गले

को बाँध दी जाती थी। दोपहर को ठंडी मिट्टी की पट्टी आधा घंटा रोज पेड़ू पर रखी जाती थी। रोजाना एनिमा और कटि-स्नान दिया जाता था। ग्यारह दिन के बाद धीरे-धीरे उसे खुराक पर लाकर उपवास में घटा हुआ वजन बढ़ाकर, आहार व उपचारों का उसे बराबर ज्ञान करा दिया गया। एक महीना खतम होते ही वह रोगमुक्त होकर चली गयी। घर पहुँचने पर चार साल में चार पत्र उसके आये। उसने उनमें लिखा कि फिर से कभी भी टॉन्सिल की जगह सूजन नहीं आयी और हमेशा तबीयत अच्छी रही है।

अपेण्डिसाइटिस का ऑपरेशन भी शुरू की हालत में रोका जा सकता है। पेट में दाहिनी ओर दर्द शुरू होता है। लगातार दर्द रहने से डॉक्टर के इलाज शुरू होते हैं। तात्कालिक तो आराम लगता है, मगर फिर से वही हालत शुरू होती है। ऑपरेशन की सलाह दी जाती है। ऑपरेशन टालने के लिए वैद्य के उपचार शुरू होते हैं। तात्कालिक लाभ होने पर भी हालत में सुधार नहीं होता। हारकर आखिरी इलाज के तौर पर प्राकृतिक चिकित्सा के पास पहुँच जाते हैं। दर्द का मूल कारण कब्ज होती है। मगर यह मूल कारण न डॉक्टर बताता है, न वैद्य। मूल कारण दवा से दूर नहीं होता। दर्द इतना पुराना हो जाता है कि प्राकृतिक चिकित्सक की पूरी कसौटी हो जाती है। दर्द होते ही शुरू में प्राकृतिक इलाज शुरू किया जाय, तो दर्द मिट जाने की पूरी संभावना रहती है; मगर ऐसा नहीं होता। फलस्वरूप ऑपरेशन किया जाता है। मगर मूल कारण जब तक दूर न हो, तब तक कुछ शिकायत आँतों में बनी रहेगी, उसे टाल नहीं सकते। कब्ज से बवासीर शुरू हो सकती है। भावार्थ यह कि दर्द-काल में रोग का मूल कारण दूर करने की कोशिश की जाय, तो काफी ऑपरेशन टल सकते हैं।

❀ ❀ ❀

प्राकृतिक चिकित्सा पर आक्षेप : ४ :

प्राकृतिक चिकित्सा के उपचार काफी महँगे होते हैं, ऐसा प्राय आक्षेप किया जाता है। उसमे तथ्य नहीं है, ऐसा तो मैं नहीं कहूँगा। मगर उसका कारण क्या है, वह देखना होगा। पहला कारण यह है कि बीमार होते ही प्रारंभ में ऐलोपैथी के उपचार किये जाते हैं और वे लंबे अरसे तक चलते रहते हैं। तरह-तरह की जहरीली दवाइयाँ शरीर मे डाली जाती हैं। जब उससे रोग निर्मूल नहीं होता, तब वैद्य की दवा चलती है। वह भी लंबे अरसे तक चलती है। उससे ठीक न होने पर होमियो-पैथी की दवा चलती है। उससे भी ठीक न होने पर आखिरी इलाज के तौर पर प्राकृतिक चिकित्सा की शरण ली जाती है। बीमारी बहुत क्रॉनिक हो जाती है, इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा का इलाज भी लंबे अरसे तक करना पडता है। शरीर काफी क्षीण हो जाता है, इसलिए दूध-फल की मात्रा ज्यादा रखनी पडती है। खर्च हमेशा दूध और फल मे होता है। बीमार पड़ते ही प्राकृतिक इलाज किया जाय, तो थोड़े दिन मे रोगी रोगमुक्त हो सकता है। ज्यादा दूध, फल की भी आवश्यकता नहीं रहेगी और खर्च कम पड़ेगा।

एक उदाहरण यहाँ पेश करता हूँ। सन् १९५४ मे पूर्व अफ्रीका गया था। कुछ कारणो से वहाँ पर मुझे इन्फ्लुएंजा का बुखार आ गया। बुखार १०३° तक पहुँच गया। मैने दो दिन सिर्फ पानी का उपवास किया, सुबह दो दिन एनिमा लिया। बुखार उतर गया, पर खाँसी रही। खाँसी ज्यादा थी। तीसरे दिन मैंने थोडा दूध और मोसंबी ली और आहिस्ता-आहिस्ता पाँच-सात दिन में हमेशा की खुराक पर आ गया। खाँसी धीरे-धीरे

कम हो रही थी, १५ दिन में वह भी चली गयी। उस महीने का खर्च हमेशा की अपेक्षा कम आया। क्योंकि दो दिन का उपवास किया, उसमें कुछ खर्च हुआ नहीं। बाद में चालू खुराक पर आने में पाँच-सात दिन चले गये। उसमें भी खर्च कुछ कम पड़ा। इस पर से आप देख सकेंगे कि प्राकृतिक चिकित्सा में खर्च ज्यादा पड़ने के बजाय कम आना चाहिए। दूसरा कारण यह है कि केन्द्रीय उपचार में याने केन्द्र में जो उपचार किया जाता है, वह थोड़ा महँगा पड़ेगा ही। केन्द्र में व्यवस्थापक, डॉक्टर, उपचारक, सेवक, हिसाब-किताब रखने पड़ते हैं। खटियाँ, गद्दी इत्यादि सुविधाएँ रखनी पड़ती हैं। यह खर्च रोगी पर ही पड़ता है। लेकिन विकेन्द्रित याने घर-बैठे यदि उपचार किया जाय, तो उसमें उपर्युक्त खर्च नहीं होता और इस तरह प्राकृतिक उपचार सस्ता ही पड़ेगा। तीसरा कारण यह है कि प्राकृतिक चिकित्सा हिन्दुस्तान में अभी बाल्यावस्था में है, इस कारण सस्ते उपचार की खोज अभी बाकी है। वह निकट भविष्य में होगी, ऐसा विश्वास है। यह सब होते हुए भी समग्र दृष्टि से देखा जाय, तो खादी जैसे महँगी नहीं है, वैसे ही पैसे में न देखकर समग्र दृष्टि से देखने पर केन्द्रीय उपचार शायद महँगा न लगे। क्योंकि केन्द्र में उपचार का ज्ञान मिलता है और संयम का अभ्यास होता है। उसका भावी जीवन में लाभ मिलता है। लाभ का मतलब ज्ञान और संयम से भविष्य में कभी बीमार पड़ने की सभावना नहीं रहती। इससे पैसे की बचत ही होगी। इसका अर्थ यह कि प्राकृतिक उपचार से जो रोगी स्वस्थ होकर जाते हैं, वे ज्ञान और संयम से जीवन बिताते हैं, तो भविष्य में डॉक्टर के पास जाने की उन्हें कभी जरूरत नहीं रहेगी और इससे पैसे की बचत होगी, यह स्पष्ट है।

प्राकृतिक चिकित्सा में समय बहुत लगता है, यह दूसरा आक्षेप है। सब इलाज कराकर आखिर में प्राकृतिक उपचार करने पर समय लगना स्वाभाविक है। लेकिन अगर शुरू में प्राकृतिक उपचार कराया जाय, तो थोड़े ही समय में रोगी स्वस्थ होगा, इसमें सन्देह नहीं है।

अन्य चिकित्साओं के प्रति प्राकृतिक चिकित्सकों की दृष्टि : ५ :

ऐलोपैथी, आयुर्वेद, होमियोपैथी आदि उपचार-शास्त्रों की तरफ देखने की नजर सत्यमय होनी चाहिए। सत्यदृष्टि का मतलब यह है कि उनमें जो अच्छा अंश हो, उसे ग्रहण करने में जरा भी हिचक न हो। उनका सब शास्त्र निकम्मा है, ऐसा मानने में साम्प्रदायिकता सिद्ध होगी। क्षय के बड़े-बड़े रुग्णालय वे चला रहे हैं। उसमें उन्हें कुछ हद तक सफलता मिली है। प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति से क्षय का अस्पताल चलाने में हम कितने कामयाब होंगे, यह सोचने की बात है। मैं खुद लम्बे अर्से तक क्षय-रोगी रहा हूँ। इंजेक्शन भी मैंने लिये हैं। active stage यानी क्षय-सचार की स्थिति इंजेक्शन से चली गयी, यह मुझे कबूल करना होगा। मगर शक्ति दिलाने में डॉक्टर असमर्थ रहे। वह शक्ति मुझे प्राकृतिक उपचारों से मिली और वह भी इस कदर मिली कि मुझे खुद को ताज्जुब हुआ। इससे प्राकृतिक चिकित्सा पर मेरी श्रद्धा बेहद बैठ गयी। इतना होते हुए भी अपने तथा औरों के अनुभव से मेरे ध्यान में यह आया है कि प्राकृतिक चिकित्सा की कुछ मर्यादाएँ हैं। जंतुओं के साथ

संबंध रखनेवाले क्षय जैसे रोगों में, जब कि मरीज की जीवन-शक्ति बहुत क्षीण हो गयी हो, केवल प्राकृतिक उपचारों से हम कामयाब होंगे, ऐसा नहीं कह सकते। भावार्थ यह कि निसर्गोपचार की कुछ मर्यादाएँ हों, तो वे हमारे ध्यान में आनी चाहिए और उनको स्वीकार करना चाहिए।

एलोपैथी आदि उपचार-पद्धतियों में जो मूलभूत दोष हैं, वह बतलाना हमारा फर्ज है। जैसे वे हमारी मिट्टी, पानी, धूप आदि की हँसी उड़ाते हैं, वैसे हम उनके शास्त्र की निन्दा न करें। डॉक्टर लोग सत्य-दृष्टि रखते हुए तटस्थ दृष्टि से प्राकृतिक उपचार-शास्त्र का अध्ययन नहीं करते हैं और उसके सत्यांश को ग्रहण करके जनता को उसका लाभ नहीं पहुँचाते हैं, यह उनका विचार-दोष है, इसमें सन्देह नहीं।

निसर्गोपचार में रामनाम का स्थान : ६ :

रामनामावलम्बी निसर्गोपचार गांधीजी की विशेष कल्पना है। अब तक पाश्चात्य या प्राच्य निसर्गोपचारकों में किसीके ध्यान में यह विचार आया हो, ऐसा दिखाई नहीं पड़ता। गांधीजी के 'रामनाम' वाली किताब पर आचार्य विनोबा भावे ने एक अच्छा भाष्य लिखा है। उस भाष्य में इस किताब में से कुछ उद्धरण दिये गये हैं। वे उद्धरण यहाँ दिये जा रहे हैं, जिससे गांधीजी के इस विशेष विचार का हमें दर्शन होगा।—

१. इस बार किडनी और लिवर दोनों बिगड़े हैं. मेरी दृष्टि से यह रामनाम में मेरे विश्वास के कच्चेपन की वजह से है।

२. जहाँ परमेश्वर का नाम वहाँ निर्विकारिता। जहाँ निर्विकारिता, वहाँ पूर्ण आरोग्य।

३. जब मनुष्य में उस अदृश्य शक्ति के प्रति पूर्ण जीवित श्रद्धा पैदा हो जाती है, तब उसके शरीर में भीतरी परिवर्तन होता है।

४ रामभक्त कुदरती कानून पर चलेगा। इसलिए उसे किसी तरह की बीमारी होगी ही नहीं। होगी भी, तो वह उसे पंचमहाभूतों की मदद से अच्छा कर लेगा।

५. भक्त को बीमारी नहीं होगी। होगी भी, तो वह आहारादि के परिवर्तन से उसे दुरुस्त कर लेगा। अगर दुरुस्त न हो सका, तो शांति से देह छोडेगा।

६. 'रामनाम' सिर्फ कल्पना की चीज नहीं है। परमात्मा में ज्ञान के साथ विश्वास हो और उसके साथ कुदरत के नियमों का पालन किया जाय, तभी किसी दूसरी मदद के बिना रोगी अच्छा हो सकता है। जहाँ विचार शुद्ध हो, वहाँ बीमारी आ ही नहीं सकती।

आचार्य विनोबाजी ने इस पर से जो सारांश निकाला है, वह इस प्रकार है :

जीवनचर्या

अ. हमेशा शुद्ध, स्वच्छ, युक्त और मिताहार तथा विशेष प्रसंगों में अल्पाहार और निराहार।

आ. देह, वाणी, मन की शुद्धि और आसपास के सारे वातावरण की स्वच्छता।

इ. कुदरत पर प्यार और उसका उन्मुक्त सेवन।

ई. अपने को देह से भिन्न जानना, प्राणीमात्र की सेवा में लग जाना और विशुद्ध चित्त से परमेश्वर का निरंतर स्मरण।

यह है जीवनचर्या। इसीको ब्रह्मचर्य कहते हैं, यही रामनाम का उपचार है।

इन वचनों से गांधीजी की 'रामनाम'-कल्पना स्पष्ट हो जाती है।

गांधीजी और रामनाम[१]

(१) रामनाम सब जगह मौजूद रहनेवाली रामबाण दवा है; यह शायद मैंने पहले-पहल उरुली कांचन में ही साफ-साफ जाना था।

(२) इसलिए सच्चा कुदरती इलाज तो रामनाम ही है। इसीलिए रामबाण शब्द निकला है। रामनाम ही रामबाण इलाज है। मनुष्य के लिए कुदरत ने उसीको योग्य माना है। कोई भी व्याधि हो, अगर मनुष्य हृदय से रामनाम ले, तो उसकी व्याधि नष्ट होनी चाहिए।

(३) जिस चीज का मनुष्य पुतला बना है, उसीसे वह इलाज ढूंढ़े। पुतला पृथ्वी, पानी, आकाश, तेज और वायु का बना है। इन पांच तत्त्वों से जो मिल सके, सो ले। उसके साथ रामनाम तो अनिवार्य रूप से चलता ही रहे।

(४) रामनाम पोथी का बैंगन नहीं, वह तो अनुभव की प्रसादी है। जिसने उसका अनुभव प्राप्त किया है, वही यह दवा दे सकता है, दूसरा नहीं।

(५) रामनाम कोई जंतर-मंतर या जादू-टोना नहीं।

(६) बादी का इलाज प्रार्थना नहीं, उपवास है। उपवास का काम पूरा होने पर ही प्रार्थना का काम शुरू होता है, यद्यपि

---

१ ये विचार गांधीजी की 'रामनाम' किताब से लिये गये हैं।

यह सच है कि प्रार्थना से उपवास का काम आसान और हल्का बन जाता है।

(७) मैं सिर्फ ऐसे ही इलाज के प्रचार की कोशिश करता हूँ, जो मिट्टी, पानी, धूप, हवा और आकाश के इस्तेमाल से किये जा सकें। इस इलाज से मनुष्य को कुदरतन यह बात समझ में आ जाती है कि दिल से भगवान् का नाम लेना ही सारी बीमारियों का सबसे बडा इलाज है।

(८) मेरा दावा है कि शारीरिक रोगों को दूर करने के लिए भी रामनाम सबसे बढ़िया इलाज है।

(९) तन्दुरुस्त रहने का जो कानून है, वही बीमार होने के बाद बीमारी से छुटकारा पाने का भी कानून है।

(१०) मिताहार और युक्ताहार यानी कम और जरूरत के मुताबिक खाना कुदरत का दूसरा कानून है।

(११) हर आदमी को अपना डॉक्टर खुद बनकर अपने ऊपर लागू होनेवाले कानून का पता लगा लेना चाहिए। जो इसका पता लगा सकता है और उस पर अमल कर सकता है, वह १२५ बरस जीयेगा ही।

(१२) मैं तो यही कहूँगा कि रामनाम के सिवा जो कुछ भी किया जाता है, वह कुदरती इलाज के खिलाफ है। इस मध्य-बिन्दु से हम जितने दूर हटते हैं, उतने ही असल चीज से दूर जा पडते हैं। इस तरह सोचते हुए मैं यह कहूँगा कि पाँच महाभूतों का असल उपयोग कुदरती इलाज की हद है। इससे आगे बढ़नेवाला वैद्य अपने इर्द-गिर्द जो दवाइयाँ उगती हों या उगाई जा सकें, उनका इस्तेमाल सिर्फ लोगों के भले के लिए करे, पैसे कमाने के लिए नहीं, तो वह भी कुदरती इलाज करने-वाला कहला सकता है। ऐसे वैद्य आज कहाँ हैं?

(१३) कुदरती इलाज के दो पहलू हैं : एक ईश्वर की शक्ति यानी रामनाम से दर्द मिटाना और दूसरे, ऐसा उपाय करना कि दर्द पैदा ही न हो सके।

जिस जगह शरीर की सफाई, घर सफाई और ग्राम सफाई हो, वहाँ कम-से-कम बीमारी होती है। और अगर चित्त-शुद्धि भी हो, तो कहा जा सकता है कि बीमारी असम्भव हो जाती है। रामनाम के बिना चित्त-शुद्धि नहीं हो सकती। अगर देहात-वाले इतनी बात समझ जायँ, तो वैद्य, हकीम या डॉक्टर की जरूरत न रह जाय।

(१४) मेरा कुदरती इलाज तो सिर्फ गाँववालों के लिए ही है। इसलिए उसमें खुर्दबीन, एक्सरे वगैरह की कोई जगह नहीं। और न कुदरती इलाज में कुनैन, एमेटीन, पेनिसिलिन जैसी दवाइयों की ही गुंजाइश है। उसमें अपनी सफाई, घर की सफाई, गाँव की सफाई और तन्दुरुस्ती की हिफाजत का पहला स्थान है और इतना करना काफी है। इसकी तह में खयाल यह है कि अगर हर आदमी इस कला में निष्णात हो सके, तो कोई बीमारी ही न हो। और बीमारी आ जाय, तो उसे मिटाने के लिए कुदरत के सभी कानूनों पर अमल करने के साथ-साथ राम-नाम ही असल इलाज है। यह इलाज सार्वजनिक या आम नहीं हो सकता। जब तक खुद इलाज करनेवाले में रामनाम की सिद्धि न आ जाय, तब तक रामनामरूपी इलाज को एकदम आम नहीं बनाया जा सकता। लेकिन पंचमहाभूतों में से यानी पृथ्वी, पानी, आकाश, तेज और हवा में से जितनी शक्ति ली जा सके, उतनी लेकर रोग मिटाने की यह एक कोशिश है, और मेरे खयाल में कुदरती इलाज यहीं खतम हो जाता है। इसलिए आजकल उरुली कांचन में जो प्रयोग चल रहा है, वह गाँववालों को तन्दुरुस्ती की हिफाजत करने की कला सिखाने और बीमारों की

बीमारी को पंचमहाभूतों की मदद से मिटाने का प्रयोग है। जरूरत मालूम होने पर उरुली में मिलनेवाली जड़ी-बूटियों का इस्तेमाल किया जा सकता है, और पथ्य-परहेज तो कुदरती इलाज का जरूरी हिस्सा है ही।

(१५) हमें अपना यह वहम दूर करना होगा कि जो कुछ करना है, उसके लिए पश्चिम की तरफ नजर दौड़ाने पर ही आगे बढ़ा जा सकता है। अगर कुदरती इलाज सीखने के लिए पश्चिम जाना पड़े, तो मैं नहीं मानता कि वह इलाज हिंदुस्तान के काम का होगा। अगर रामनाम लेना सीखने के लिए विलायत जाना जरूरी हो, तो हम कहीं के भी न रहे। रामनाम को मैंने अपनी कल्पना के कुदरती इलाज की बुनियाद माना है। इसी तरह यह सहज ही समझ में आने लायक है कि पृथ्वी, पानी, आकाश, तेज और वायु के इलाज के लिए समुद्र पार जाने की जरूरत हो ही नहीं सकती। दूसरा जो कुछ सीखने का है, वह यहीं है—गाँवों में मौजूद है। देहाती दवाएँ, जडी-बूटियाँ दूसरे देशों में नहीं मिलेंगी। वे तो आयुर्वेद में ही हैं।

(१६) यहाँ यह भी कह देना जरूरी है कि कुदरती इलाज सीखने के लिए यह बिलकुल जरूरी नहीं कि शरीर-शास्त्र सीखा ही जाय।

(१७) कुदरती इलाज अभी गाँवों में तो दाखिल हुआ ही नहीं है। उस शास्त्र में हम गहरे पैठे ही नहीं हैं। करोड़ों को ध्यान में रखकर उस पर सोचा नहीं गया है। अभी वह शुरू ही हुआ है। आखिर वह कहाँ जाकर रुकेगा, सो कोई कह नहीं सकता। सभी शुभ साहसों की तरह उसके पीछे भी तप की ताकत जरूरी है। नजर पश्चिम की ओर न जाय, बल्कि अपने अन्दर जाय।

(१८) एक भाई पूछते हैं कि क्या रामनाम में ऑपरेशन की इजाज़त नहीं ? क्यों नहीं ? एक टाँग अगर दुर्घटना में कट गयी है, तो रामनाम उसे थोड़े ही वापस ला सकता है ! लेकिन बहुत-सी हालतों में ऑपरेशन ज़रूरी नहीं होता। मगर जहाँ ज़रूरी हो, करवा लेना चाहिए।

(१९) ज्यादा गहरे उतरें, तो हम देखेंगे कि रामभक्त पंच-महाभूतों का सेवक होगा। वह कुदरत के कानून पर चलेगा। इसलिए उसे किसी तरह की बीमारी होगी ही नहीं। होगी तो वह उसे पंचमहाभूतों की मदद से अच्छा कर लेगा। यानी वह मिट्टी, हवा, पानी, सूरज की रोशनी और आकाश का सहज, साफ़ और व्यवस्थित तरीके से इस्तेमाल करके जो पा सकेगा, उसमें सन्तोष मानेगा। यह उपयोग रामनाम का पूरक नहीं, पर रामनाम की साधना की निशानी है। रामनाम को इन मददगारों की ज़रूरत नहीं। लेकिन इसके पहले जो एक के बाद दूसरे वैद्य-हकीमों के पीछे दौड़े और रामनाम का दावा करे, उसकी बात कुछ जँचती नहीं।

(२०) कोई ज़रूरत से ज्यादा खाना खाकर 'रामनाम' जपे और फिर भी उसे पेट-दर्द हो, तो वह गांधी को दोष नहीं दे सकता।

(२१) राम का नाम लेना और रावण का काम करना निकम्मी-से-निकम्मी चीज़ है। हम अपने आपको धोखा दे सकते हैं, दुनिया को धोखा दे सकते हैं, लेकिन राम को धोखा नहीं दे सकते।

(२२) लेकिन मेरा यह भी विश्वास है कि रामनाम ही सारी बीमारियों का सबसे बड़ा इलाज है। इसलिए वह सारे इलाजों से ऊपर है।

(२३) बीमारी मात्र मनुष्य के लिए शरम की बात होनी चाहिए। बीमारी किसी भी दोष की सूचक है। जिसका-तन और मन सर्वथा स्वस्थ है, उसे बीमारी होनी ही नहीं चाहिए।

(२४) मैं जितना ज्यादा विचार करता हूँ, उतना ही ज्यादा महसूस करता हूँ कि ज्ञान के साथ हृदय से लिया हुआ रामनाम सारी बीमारियों की रामबाण दवा है।

(२५) रामनाम सिर्फ कल्पना की चीज नहीं, उसे तो दिल से निकलना है। परमात्मा में ज्ञान के साथ विश्वास हो और उसके साथ-साथ कुदरत के नियमों का पालन किया जाय, तभी किसी दूसरी मदद के बिना रोगी अच्छा हो सकता है। उसूल यह कि शरीर की सेहत तभी बिलकुल अच्छी हो सकती है, जब मन की सेहत पूरी-पूरी ठीक हो। और मन पूरा-पूरा ठीक तभी होता है, जब दिल पूरा-पूरा ठीक हो। यह वह दिल नहीं, जिसे डॉक्टर छाती जाँचने के यन्त्र (स्टेथोस्कोप) से देखते हैं, बल्कि वह दिल है, जो ईश्वर का घर है।

(२६) जहाँ विचार शुद्ध हो, वहाँ बीमारी आ ही नहीं सकती।

(२७) किसीका हृदय पवित्र है, तो उसकी सेहत रामनाम न लेते हुए भी उतनी ही अच्छी रह सकती है। बात सिर्फ यह है कि सिवा रामनाम के पवित्रता पाने का और कोई तरीका मुझे मालूम नहीं।

(२८) अगर अपने विचारों पर आपका कोई काबू नहीं है और अगर आप एक तंग अँधेरी कोठड़ी मे उसकी तमाम खिड़कियाँ और दरवाजे बन्द करके सोने में कोई हर्ज नहीं समझते, और गन्दी हवा लेते हैं या गन्दा पानी पीते हैं, तो मैं कहूँगा कि आपका रामनाम लेना बेकार है।

(२६) मैंने जो देखा और धर्मशास्त्र में पढ़ा है, उसके आधार पर मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि जब मनुष्य में उस अदृश्य शक्ति के प्रति पूर्ण जीवित श्रद्धा पैदा हो जाती है, तब उसके शरीर में भीतरी परिवर्तन होता है। लेकिन यह सिर्फ इच्छा करने मात्र से नहीं हो जाता। इसके लिए सावधान रहने और अभ्यास करते रहने की जरूरत रहती है। दोनों के होते हुए भी ईश्वर-कृपा न हो, तो मानव-प्रयत्न व्यर्थ जाता है। ●●●

निसर्गोपचार का जीवन से संबंध : ७ :

निसर्गोपचार का जीवन के साथ निकट संबंध माना गया है। यह निसर्गोपचार पद्धति की विशेषता है। ऐलोपैथी, आयुर्वेद, होमियोपैथी आदि उपचार-पद्धतियों का जीवन के साथ संबंध नहीं माना गया है। उदाहरण के लिए ऐलोपैथी का डॉक्टर चाय, सिगरेट पी सकता है, शराब भी पी सकता है। उसमें ये व्यसन होते हुए भी डॉक्टर की हैसियत से वह अयोग्य नहीं माना जायगा। डॉक्टर व्यभिचारी हो, तो भी होशियार और अनुभवी होने के कारण लोग उसकी सराहना करते हुए अपना इलाज बड़े चाव से उससे करवायेंगे। डॉक्टर का जीवन नैतिक है या अनैतिक, इससे मरीज को कोई सरोकार नहीं। मरीज यही कहेगा कि डॉक्टरी-विद्या में यदि वह निष्णात और अनुभवी है, तो उसका जीवन कैसा है, यह देखने की मुझे क्या जरूरत है। वह मेरे रोग का निदान ठीक करता है और मुझे दवाइयों या इंजेक्शन देकर मेरा अच्छा इलाज करता है, तो उससे मुझे पूरा संतोष है। उसके इलाज से मेरा रोग दूर हो जाता है, तो उसके अनीतिमय या व्यभिचारी जीवन की

शिकायत करने का मेरे लिए कोई कारण नहीं है। आयुर्वेद और होमियोपैथी का इलाज करानेवालों की भी यही दृष्टि रहेगी। इसका कारण स्पष्ट है—रोगी का रोग दूर करने के लिए रोगी के जीवन में परिवर्तन करने की या रोगी का जीवन सयमी या परिशुद्ध हो, उसकी आवश्यकता इन तीनो उपचार-पद्धतियों में नहीं मानी गयी है। जीवन में परिवर्तन किये विना, बुरी आदतें छोड़े विना यानी जीवन परिशुद्ध बनाये विना रोग स्थायी रूप से दूर नहीं हो सकता, ऐसी कल्पना स्वीकार की जाय, तब तो डॉक्टर को अपना जीवन शुद्ध रखना ही होगा। जीवन में परिवर्तन किये बिना यानी जीवन सयमी और परिशुद्ध हुए बिना रोग समूल नष्ट नहीं होता, ऐसी दृढ प्रतीति प्राकृतिक चिकित्सक की होने की वजह से जिस विशुद्ध जीवन की, सयमी और निर्व्यसनी जीवन की रोगी का रोग हटाने के लिए अपेक्षा की जाती है, वैसा संयमी, निग्रही और विशुद्ध जीवन निसर्गोपचारक का न हो, तो रोगी का रोग दूर करने के लिए रोगी को उससे जो प्रेरणा मिलनी चाहिए, वह न मिल सकेगी। शरीर हमेशा के लिए स्वस्थ रखने की जो चाबी या तरकीब रोगी के ध्यान में आनी चाहिए, वह न आ सकेगी। इसलिए डॉक्टर, वैद्य, हकीम या होमियोपैथीवाले डॉक्टर जिस तरह अपना पेशा जीवन से निरपेक्ष रहकर कर सकते हैं, वैसे निसर्गोपचारक नहीं कर सकेगा। निसर्गोपचारक का जीवन जितना उन्नत होगा, उतने ही अश में रोगी को अपना जीवन उन्नत करने में और उसके जरिये रोग हटाने में उससे प्रेरणा मिलेगी और हमेशा रोगमुक्त रहने का तरीका उसके ध्यान में आयेगा।

● ● ●

निसर्गोपचार की विशेषता : ८ :

निसर्गोपचार-पद्धति संयम पर अधिष्ठित होने से वह रोग को रोकनेवाली है, यह उसका वैशिष्ट्य है। आहार-विहार के असंयम से प्रायः लोग बीमार होते है। चबाकर खाने की लोगों को आदत नहीं होती। कइयो को इसका ज्ञान भी नहीं होता। जरूरत से ज्यादा खाने की तरफ लोगो का झुकाव रहता है। आहार मे मिर्च-मसालेवाले और तले पदार्थ न हों, तो लोगों को भोजन भाता नहीं। भोजन मे पत्ताभाजी या सलाद प्रायः नहीं होते। दाल का परिमाण कभी-कभी ज्यादा रहता है। कसरत करने की आदत बहुत थोड़ो मे होती है। आजीविका के बाह्य व्यवसाय में जो थोड़ी-बहुत शारीरिक हलन-चलन होती है, उसी पर लोग संतुष्ट रहते हैं। बहनों की रसोई आदि घर के कामो मे जो शारीरिक हलन चलन होती है, उसीको व्यायाम समझकर उस पर बहने संतुष्ट रहती हैं। अच्छी आर्थिक स्थितिवाले हद से ज्यादा घी-दूध का सेवन कर अपने मेदे की वृद्धि कर लेते हैं। फिर उसे कम करने के लिए अनेक प्रकार की दवाइयाँ लेते रहते है। कइयो को कब्ज की शिकायत शुरू होती है और रेचक दवाइयाँ लेते हैं। इस तरह निसर्ग के नियमों का भलीभाँति पालन न करने से लोग तरह-तरह की बीमारी से पीड़ित रहते है। यह शहरों मे रहनेवालो की स्थिति है।

देहाती जनता का अवलोकन करने से मालूम होगा कि किसान और मजदूर-वर्ग के लोग श्रमनिष्ठ होने से उनको पर्याप्त व्यायाम मिलता है। वह कभी-कभी आवश्यकता से ज्यादा भी हो जाता है। व्यायाम के अनुसार उन्हें पौष्टिक आहार मिलना चाहिए, पर मिल नहीं पाता। खान-पान में शहरवालों की तरह

उनमें भी असंयम रहता है। इसलिए शहर की अपेक्षा देहाती लोगों का निसर्ग के साथ ज्यादा सम्बन्ध होने पर भी वे बीमारी से पीड़ित रहते हैं। इस तरह लोग बीमार न हों, इसके लिए निसर्गोपचार-शास्त्र उपर्युक्त आहार-विहार में रहे हुए दोषों को बतलाकर उन्हें कैसे दूर किया जाय, यह बतलाता है। क्या खाना, किस तरह खाना, कब खाना, कितना खाना, व्यायाम कितना करना, नींद कितनी लेना, शरीर शुद्ध रखने के लिए क्या किया जाय, उपवास किस तरह किया जाय, उपवास से क्या लाभ होता है, शरीर पंचमहाभूतों का बना होने से ठण्डा पानी, मिट्टी, शुद्ध हवा, आकाश-सेवन, धूप-सेवन इत्यादि पंचमहाभूतों के इस्तेमाल से शरीर किस तरह स्वस्थ रह सकता है, इन सब बातों का ज्ञान कराकर उसे आचरण मे लाना—यही निसर्गोपचार-शास्त्र का लक्ष्य है। ऐलोपैथी आदि शास्त्र रोगों को रोकनेवाली उपर्युक्त बातों को महत्त्व न देकर आदमी के बीमार पड़ने पर उसका रोग दवा से कैसे हटाया जा सकता है, इसीके चिंतन में रहते हैं। अलग-अलग किस्म की दवाओं की खोज करने में ये शास्त्र मशगूल रहते हैं। तीव्र और जहरीली दवाओं के सेवन से रोग तत्काल भले ही दब जाय, पर समूल नष्ट नहीं होता, बल्कि जहरीली दवा से शरीर में नयी विकृति पैदा होती है। यह जानते-समझते हुए भी उस दिशा मे इनका प्रयोग दिन-ब-दिन बढ़ता ही जाता है। लोग किस तरह बीमार न हों, इसके चिंतन में ऐलोपैथी आदि शास्त्रों का ध्यान न होने से लोगों को स्वस्थ और निरोग रखने में इन शास्त्रों का उपयोग नहीं के बराबर है। निसर्गोपचार-शास्त्र ने अपना सारा लक्ष्य निसर्ग से प्राप्त स्वास्थ्य कैसे टिकाया जा सकता है, इस पर केन्द्रित कर रखा है। इसी पर से ऐलोपैथी आदि शास्त्रों से निसर्गोपचार-शास्त्र का वैशिष्ट्य सहज ही ध्यान में आ जाता है।

दूसरा वैशिष्ट्य यह है कि यह शास्त्र लोगों के बीमार होने पर बिना दवा के उपवास, मिट्टी, पानी, धूप आदि प्राकृतिक उपचारों से रोग को हटाने की कोशिश करता है। उपवास, मिट्टी, पानी, धूप आदि उपचारों मे रोग निर्मूल करने की जो प्रचण्ड शक्ति रहती है, उसका दर्शन लोगों को न होने से दवाओं पर लोगों की श्रद्धा जमी हुई है। मगर उपर्युक्त प्राकृतिक उपचारों मे रही हुई प्रचण्ड शक्ति का दर्शन लोगों को हो जाने पर लोगों की दवा पर श्रद्धा कम हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं। औषधि-सेवन से शरीर का जैसे नुकसान होता है, वैसे उपवास आदि उपचारों से नहीं होता, यह दूसरा वैशिष्ट्य है। तीसरा वैशिष्ट्य यह है कि दवाओं में जो खर्च होता है, वह खर्च मिट्टी पानी, उपवास आदि उपचारों मे बिल्कुल न होने से यह उपचार-पद्धति सस्ती और सबको सहज उपलभ्य होने से पुसाने-वाली है। चौथा वैशिष्ट्य यह है कि मिट्टी, पानी, धूप, उपवास और आहार मे योग्य परिवर्तन आदि सादे उपायों से शरीर का आरोग्य किस तरह टिकाया जा सकता है और बिगड़ा हुआ किस तरह दुरुस्त किया जा सकता है, इसका ज्ञान मिलने से इसकी कला, इसकी तरकीब ध्यान मे आने से, इसकी चाबी हाथ लगने से सारा जीवन स्वस्थ हालत मे बिताया जा सकता है। रोगमुक्त रहने से शरीर की रोग-प्रतिकार-शक्ति कायम रहती है। जीवन सुखी होकर आयु बढ़ने की गुन्जाइश रहती है। बीमारी मे डोक्टरों और दवाओ में होनेवाला खर्च बच जाता है और जीवन समृद्ध बनता है।

●●●

पाश्चात्य निसर्गोपचारकों की विचारधारा : ६ :

पाश्चात्य निसर्गोपचारकों की विचारधारा में 'राम-नाम' को कहीं भी स्थान दिया हुआ दिखाई नहीं देता। यह विचार गांधीजी को सूझा है, जो वैद्यक-शास्त्र पर आधारित है। "औषधं जान्हवीतोयं वैद्यो नारायणो हरि" यह वैद्यक-शास्त्र का वचन है। राम-नाम के सहारे जो जीवन बिता रहे हैं, उनको रोग होगा नहीं, गांधीजी का यह विचार पाश्चात्य निसर्गोपचारकों को शायद मान्य नहीं होगा। मगर पाश्चात्य लोगों ने भौतिक शास्त्र मे प्रवीण होने के कारण भौतिक दृष्टि से निसर्गोपचार का जितना चिन्तन हो सकता है, उतना किया है। पानी के, सूर्य-किरणों के उपचार यन्त्र के सहारे, यूरोप के निसर्गोपचार केन्द्रों मे किये जाते हैं। उसी तरह बिजली के उपचार भी यन्त्र के सहारे किये जाते हैं। अल्ट्रा वायोलेट रेज की खोज भी उन्होंने की है। उसके लिए अलग-अलग यन्त्रों के साधन उन्होंने खोज निकाले हैं। इन शोधों के बारे में उन्होने जो कष्ट उठाये हैं, उसके लिए उनके प्रति आदर जरूर पैदा होता है। मगर साधन-सम्पन्न यन्त्राश्रित उनकी यह उपचार-पद्धति हिन्दुस्तान जैसे गरीब देश को पुसायेगी नहीं, यह कबूल करना होगा। इसलिए गांधीजी की बतायी हुई उपचार-पद्धति—भीतर रामनाम और बाहर से उपवास, मिट्टी, पानी, धूप आदि पञ्च-महाभूतों का उपचार—इस तरह अन्तर्बाह्य सजी हुई—ही हमारे देश के लिए अधिक अनुकूल है।

सब पाश्चात्य निसर्गोपचारकों में उपचार के सबंध मे मत-भेद नहीं है, ऐसी बात नहीं। केलाग लिंडल्हार जैसे उपाधिधारी डॉक्टर भी, जो कि दीर्घकाल के अनुभवी निसर्गो-

पचारक हैं, मिट्टी, पानी, धूप, एनिमा आदि पंचमहाभूतों के बाह्य उपचारों मे श्रद्धा रखते हैं। मगर फिलहाल शेलटन, थामसन आदि कुछ निसर्गोपचारक ऐसा कहने लगे हैं कि रोग मिटाने का कार्य जीवन-शक्ति ही करती है। इसलिए मिट्टी, पानी, धूप, एनिमा आदि बाह्य उपचारों की कोई जरूरत नहीं है। आरोग्य कायम रखने के लिए उपवास की शायद कोई खास जरूरत न रहे। मगर जीर्ण या तीव्र रोगो मे रोग नष्ट होने तक केवल पानी के लंबे उपवास आवश्यक हैं, ऐसा वे मानते हैं। वे मानते हैं कि उपवास-काल मे पूरा आराम लेना बहुत जरूरी है। उपवास में रोजाना एनिमा लेने की जरूरत नहीं। अपने-आप दस्त आय तो ठीक है, न आये, तो एनिमा लेने की आवश्यकता नहीं। पानी पीने की भी कोई जरूरत नहीं। प्यास लगे, तो अवश्य पी सकते हैं। उपवास मे एनिमा लेने से आँतो को पूरा आराम नहीं मिलता और ख्वामख्वाह आँते धुल जाती हैं। उससे मल-विसर्जन-शक्ति भी घट जाती है, ऐसा उनका मानना है। एक दृष्टि से देखा जाय, तो ऐसा लग सकता है कि गांधीजी के निरुपचार रामनाम के सदृश ही उपर्युक्त विचारधारा है। परन्तु वास्तव मे ऐसा नहीं है। गांधीजी का रामनाम सिर्फ निरुपचार रामनाम न होकर सोपचार रामनाम है, यह ध्यान में रखना चाहिए। भीतरी रामनाम के साथ बाहर से मिट्टी, पानी, धूप आदि पंचमहाभूतों के उपचार का सहारा लेना चाहिए, ऐसा गांधीजी का कहना था। इस तरह गांधीजी की विचारधारा एकांगी न होकर सम्यक् थी। एक ओर यंत्राश्रित साधनसंपन्न निसर्गोपचार और दूसरी ओर उपचाररहित यानी निरुपचार निसर्गोपचार, ये दो सिरे छोड़कर गीता का मध्यम मार्ग यानी सोपचार रामनाम स्वीकार कर जनता की ज्यादा-से-ज्यादा सेवा हम कर सकेंगे; इतना ध्यान में रखें।

इसके अतिरिक्त पाश्चात्य निसर्गोपचारकों के विचार पूर्ण सत्य समझकर हम यहाँ उसे पूर्णतया लागू करने की चेष्टा करने के बजाय उसमें जितना सत्यांश प्रतीत हो, उतना स्वीकार करके उसे अमल में लाने की कोशिश करेंगे, तो ज्यादा लाभ होगा।

उनमें और हममें जो फर्क है, वह ध्यान में रखना जरूरी है। यूरोप, अमेरिका की हवा काफी ठंडी होती है और हिन्दुस्तान की गरम। उनके सारे प्रदेश सधन हैं और हमारा देश निर्धन है। उनके देशों में दूध बहुत होता है, हमारे देश में बहुत कम। उनके शरीर मजबूत रहते हैं, हमारे शरीर उनके मुकाबले मे साधारणतया दुर्बल ही गिने जायेंगे। इस तरह चार प्रकार का फर्क होने से पाश्चात्य विचारकों के विचार पूर्ण रूप से यहाँ लागू करने की गलती हम न करें। निसर्गोपचार-शास्त्र मे जिन-जिन वस्तुओं का समावेश हो सकता है, उनका संग्रह करके सबका उपयोग अनाग्रह वृत्ति से करते रहें, तो हम इस शास्त्र को व्यापक और समृद्ध बना सकेंगे। शारीरिक प्रकृति में इतनी विभिन्नता देखने में आती है कि हमारा शास्त्र व्यापक और विविधाग बने बिना वह समृद्ध नहीं होगा। हम यदि शास्त्र को संकुचित बनाते जायेंगे, तो सकुचित बनने से सबके लिए उसका उपयोग नहीं हो सकेगा। शरीर पचमहाभूतों का बना होने से पञ्चमहाभूतों का यानी मिट्टी, पानी, धूप आदि बाह्य उपचारों का उपयोग करने में सकोच करने की हमें कोई जरूरत नहीं है। उपवास-काल मे रोज एनिमा लिया जाय या नहीं, ये दोनों आग्रह छोड़कर उपवास में और किस रोग की किस अवस्था में एनिमा लेना आवश्यक या अनावश्यक है, चार पाइंट, तीन पाइंट, दो पाइंट या एक पाइंट कब लेना चाहिए, सादा पानी का कब लेना, पानी में नमक, नीबू डालकर या लहसुन का रस डालकर, नीम की

पत्ती का रस डालकर, तेल डालकर कब लेना यानी किस प्रकार का एनिमा कब लेने से लाभ या हानि होती है, इसका सूक्ष्म संशोधन करके शास्त्र को सूक्ष्म और समृद्ध बनाना चाहिए। उसी तरह ठण्डे या गरम पानी का उपयोग किस रोग को, किस अवस्था में, किस तरह करना, गरम मिट्टी या ठण्डी मिट्टी का उपयोग किस रोग में, किस तरह करने से लाभ-हानि होती है, उनके गुणधर्म क्या हैं, वैसे ही अलग-अलग रंगीन काँच में से सूर्य-किरण लेने से रोग को हटाने में किस हद तक मदद मिलती है, मसाज कब, कितना, किस तरह लेना, अलग-अलग प्रकार के व्यायाम, अलग-अलग आसन, सूर्य-नमस्कार आदि निसर्गोपचार शास्त्रानुकूल सब बातों का सूक्ष्म अवलोकन और चिन्तन करके शास्त्र का विकास करने का लक्ष्य हमें रखना चाहिए।

●●●

निसर्गोपचारक के लिए आवश्यक षड्‌विध साधन-संपत्ति : १० :

१. सत्यनिष्ठा

निसर्गोपचारक में सत्यनिष्ठा होनी चाहिए। हम मन में चिन्तन करते हैं, वाणी से बात करते हैं, हाथ-पाँव से क्रिया करते हैं। यह कायिक, वाचिक और मानसिक कर्म दिन-ब-दिन सत्यमय होता चले, ऐसी हमारी चेष्टा होनी चाहिए। सत्य को सामने रखते हुए ऐसा मालूम हो कि हमारा मुख्य कार्य प्राकृतिक चिकित्सा का होने पर भी हम एकांगी नहीं बन सकते, हमें

तो समग्र दृष्टि से सोचना होगा। समग्र दृष्टि से यानी यथार्थ दृष्टि से सोचने पर यह बात ग्राह्य होगी कि खादी इस्तेमाल करना या वस्त्र-स्वावलम्बी बनना राष्ट्र-कल्याण की दृष्टि से बहुत आवश्यक है, तो वह पुरुष खुद खादीधारी या वस्त्र-स्वावलम्बी बनेगा। सच्चा हिन्दुस्तान देहातों में बसता है। ३५ करोड़ में से ३० करोड जनता देहात में रहती है। सबके कल्याण की दृष्टि से चिंतन करना उसका फर्ज हो जाता है। चिन्तन करने से मालूम हो कि भैंस के दूध-घी के बजाय, गाय का ही घी-दूध इस्तेमाल करना फर्ज है, तो वह गाय के घी-दूध का नियम लेगा। क्योंकि किसान दो पशुओं का पालन नहीं कर सकता। वह दूध के लिए भैंस रखता है और बैल के लिए गाय रखता है। दूध के लिए भैंस होने से उसको वह बराबर खिलाता है और गाय की उपेक्षा करता है। नतीजा यह होता है कि गाय की नस्ल उत्तरोत्तर गिरती जाती है। गाय की नस्ल गिर जाने से बैल अच्छे पैदा हो नहीं पाते। इससे खेती अच्छी नहीं हो पाती। प्राकृतिक चिकित्सक प्राकृतिक चिकित्सा का कार्य छोड़कर गो-पालन नहीं करेगा, किन्तु गाय के घी-दूध का नियम अवश्य लेगा। प्राकृतिक चिकित्सा की दृष्टि से भी गाय का घी-दूध इस्तेमाल करना जरूरी है। उसी तरह देहात का दारिद्र्य हटाने की दृष्टि से ग्रामोद्योग प्राणवान् होना आवश्यक प्रतीत होता हो, तो वह हाथ-घानी का तेल, हाथ-कुटा चावल, हाथ से तैयार की गयी दियासलाई, हाथ-कागज, हाथ-पिसा आटा इस्तेमाल करेगा। हाथ-कुटा चावल और हाथ-पिसा आटा प्राकृतिक चिकित्सा की दृष्टि से भी अत्यन्त आवश्यक है। गाँव में सबके पास खुद की जमीन नहीं रहती; इसलिए जमीन का समान बँटवारा होना नितांत जरूरी है। इस विचार से विनोबाजी ने भूदान-आन्दोलन शुरू किया है। इस बारे में भी प्राकृतिक चिकित्सक

तटस्थ नहीं रह सकता। इस आन्दोलन में सक्रिय भाग न लेने पर भी प्राकृतिक चिकित्सक अपने पास ज्यादा जमीन हो, तो उसकी मालकियत छोड़कर वह जमीन भूमि-हीनों को दे देगा। अपनी हर साल की कमाई का कुछ हिस्सा वह संपत्ति-दान में देगा। सत्यदृष्टि रखते हुए जीवन बिताना हो, तो सत्य-पालन के लिए उसे यह सब करना होगा। उसे ऐसा मालूम हो कि अन्य उपचारो की तरह प्राकृतिक चिकित्सा की भी मर्यादा है, तो उसे वह स्वीकार कर लेगा। ऐलोपैथी, आयुर्वेद, होमियोपैथी आदि उपचार-पद्धतियों के बारे मे वह गुण-ग्राहक दृष्टि रखेगा। उपर्युक्त पद्धतियो में प्राकृतिक चिकित्सा के लिए जितना अंश उपकारक होगा, उतना वह ग्रहण करेगा। प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति मे उसकी अटल श्रद्धा होते हुए भी अन्य उपचार-पद्धतियो की वह निन्दा नहीं करेगा। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुभव-वर्णन मे वह अतिशयोक्ति नहीं करेगा। प्राकृतिक चिकित्सको मे प्रायः यह दोष देखने में आता है।

सब अवस्था के सब प्रकार के रोगी प्राकृतिक चिकित्सा से अच्छे हो जाते हैं, ऐसा दावा करने के बजाय प्राकृतिक चिकित्सा की मर्यादा खोजने की वह कोशिश करेगा। इस तरह सत्य-दृष्टि रखने से निसर्गोपचार-शास्त्र को संपूर्ण बनाने में वह कामयाब होगा। निसर्गोपचार-शास्त्र परिपूर्ण है, ऐसा मानकर चलने में शास्त्र की प्रगति रुक जायगी, यह ध्यान मे रखना जरूरी है। शास्त्र को परिपूर्णावस्था तक पहुँचाना है, ऐसा मानने में शास्त्र का संशोधन जारी रहेगा और उसकी प्रगति दिन-प्रतिदिन होती रहेगी। प्राकृतिक चिकित्सा से अच्छे होनेवाले मरीजों का हमेशा गुणगान करने के बजाय, जो प्राकृतिक चिकित्सा से अच्छे नहीं हुए, जिनमे हमें पूरी सफलता न मिली हो, उनके कारण गलतियो की खोज करने का प्रयत्न करने से शास्त्र को

हम आगे ले जायँगे। ऐलोपैथी, आयुर्वेद, यूनानी या होमियोपैथी से रोगी अच्छे हो जाते हैं, ऐसा भी अनुभव आता है।

प्राकृतिक चिकित्सा से अच्छे न होने पर रोगियों के ही दोष बतलाने की हमारी वृत्ति न रहे, वल्कि अपनी गलती ढूँढ निकालने से शास्त्र को हम समृद्ध वनायेंगे, इसे न भूलें। हमारे पास यदि सत्य-दृष्टि हो, तो हम उपर्युक्त वातें वरावर ध्यान में रखेंगे।

२. विश्वव्यापी प्रेम

दूसरा गुण निसर्गोपचारक में प्रेम का उत्कर्ष यानी उसमें विश्वव्यापी प्रेम होना चाहिए। हमारा सारा व्यवहार प्रेम के आधार पर हो। कुटुम्व-सस्था प्रेम के वल पर ही टिक रही है। मगर हमारा कौटुम्विक प्रेम व्यापक नहीं होता। उसका कारण यह है कि हमारे काम-क्रोधादि विकार क्षीण नहीं होते हैं। जितने परिमाण में काम-क्रोधादि विकार क्षीण होंगे, उतने ही परिमाण मे प्रेम व्यापक बनेगा। प्राकृतिक चिकित्सक आपसी ईर्ष्या, मत्सर आदि दोषों को हमेशा टाल सकते हैं, ऐसी वात नहीं है। दूसरों का उत्कर्प हमेशा हमें सुखद लगता है, ऐसी वात भी नहीं। प्राकृतिक चिकित्सकों के अपने-अपने चिकित्सालय रहते हैं। सव तरह से अपना ही केन्द्र श्रेष्ठ है, ऐसा उसे लगने लगता है। राग-द्वेष कम होने पर हरएक केन्द्र का वैशिष्ट्य उसके ध्यान में आ सकेगा। उसके चित्त में हमेशा गुण-दृष्टि रहेगी और ईर्ष्या-मत्सर आदि चित्त के दोष मन में से निकल सकेंगे।

३. ब्रह्मचर्य-पालन

ब्रह्मचर्य-पालन निसर्गोपचारक का विशेष कर्तव्य रहेगा। इस विषय में समाज में काफी असंयम का वातावरण होने से

प्राकृतिक चिकित्सक को इसमें विशेष सावधान रहना चाहिए। निसर्गोपचारक गृहस्थ होते हुए भी गार्हस्थिक ब्रह्मचर्य-पालन में उसकी आदर्श स्थिति होनी चाहिए। अपने सामने ब्रह्मचर्य का उच्च आदर्श रखकर उसके अनुसार चलने का उसका बराबर प्रयत्न रहना चाहिए। केवल प्रजोत्पत्ति के लिए ही स्त्री-संग का आदर्श उसके सामने रहेगा। हिन्दुस्तान की जनसंख्या बहुत बढ़ जाने से दो संतान के बाद वानप्रस्थ लेना जरूरी हो जाता है। सूर्य मे अति प्रचंड उष्णता होने से सारे जगत् को कुछ अंश मे उष्णता मिल पाती है। मगर सूर्य की उष्णता कम हो जाय, तो सारी पृथ्वी ठंडी हो जाने से हम जी नहीं सकेंगे। इसी तरह समाज मे जिन्हें प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार करना है, उनकी स्थिति ब्रह्मचर्य-पालन में यदि आदर्श न हो, तो लोगों को इनसे प्रेरणा नहीं मिल सकेगी। स्वास्थ्य कायम रखने के लिए या बिगड़े स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिए ब्रह्मचर्य-पालन आवश्यक माना जायगा। इसलिए चिकित्सक के आचरण में यह चीज होना अपरिहार्य मानना चाहिए। ब्रह्मचर्य-पालन के लिए खान-पान मे संयम रखना होगा। सिनेमा आदि विकारोत्तेजक चीजें टालनी होंगी। हमेशा सद्ग्रंथों का पठन और सत्संग करना होगा, तभी ब्रह्मचर्य सध सकेगा।

४. सर्वस्पर्शी संयम

जीवन पूर्ण रूप से संयम पर अधिष्ठित होना चाहिए। संयम की पराकाष्ठा उसके जीवन मे दिखाई देनी चाहिए। सयम के अभाव में लोग अनेक रोगो के शिकार बनते हैं, खान-पान में संयम रखना लोगो के लिए अत्यधिक कठिन हो जाता है। मिर्च-मसालायुक्त, तली चीजें खाने की लोगों को बहुत आदत रहती है। इसके अतिरिक्त जरूरत से अधिक खुराक लेने की

आदत को भी लोग छोड़ नहीं पाते। गीता मे सात्त्विक, राजसिक, तामसिक आहार का वर्णन है। राजसिक और तामसिक आहार के प्रति ही अधिकतर लोगों का झुकाव रहता है। गीता में बताये गये सात्त्विक आहार पर यदि लोगो की श्रद्धा बैठानी हो, तो चिकित्सक का खुद का आहार सात्त्विक होना चाहिए। किसी भी परिस्थिति में उसे सात्त्विक आहार न छोड़ना चाहिए। इसके अलावा उसका आहार खर्चीला भी न होना चाहिए। सर्व-सामान्य लोगो का आहार उसे लेना चाहिए, मगर सामान्य लोगो के आहार मे जो दोप रहते हैं, उन्हें टालना चाहिए। उन ऋतुओ के फल वह ले सकेगा, मगर मोसबी, सतरे जैसे महँगे फल उसके भोजन में नहीं होंगे, दूध का परिमाण ज्यादा न होगा। अर्थात् दीर्घकाल तक बीमार रहने से जिनका शरीर दुर्बल हो गया हो, ऐसे चिकित्सक को अपवाद के तौर पर दूध, फल अधिक परिमाण मे लेना पड़े, तो वह बात अलग है। ऐसे अपवाद छोड़कर सामान्य लोगों को पुसाने जैसा आहार ही चिकित्सक का होना चाहिए। सामान्य आदमी के लिए आदर्श आहार क्या हो, यह बात चिकित्सक अपने आचरण से लोगो के सामने रखने की चेष्टा करेगा। प्राकृतिक चिकित्सा-शास्त्र के अनुसार आहार लेना बहुत महँगा पड़ जाता है। ऐसी धारणा अगर लोगों के मन में बैठ जाय, तो प्राकृतिक चिकित्सा का उपयोग करने में लोग उत्साहित नहीं रहेंगे। इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा-शास्त्र के अनुसार आहार लेना पुसाता है, यह बात अपने उदाहरण से प्राकृतिक चिकित्सक को सिद्ध करनी होगी। सामान्य लोगों के भोजन में उबली भाजी या टमाटर, गाजर, ककड़ी आदि की सलाद, चोकर सहित आटे की रोटी नहीं रहती। पत्ता सब्जी या सलाद महँगी न होने से चिकित्सक के भोजन में ये दो महत्त्व की चीजें उचित परिमाण में रहेंगी।

ज्यादा परिमाण मे खाने की ओर आम जनता की प्रवृत्ति रहती है, इसलिए प्राकृतिक चिकित्सक का भोजन नपा-तुला, परिमित परिमाण मे रहेगा। रात को बहुत देर से सोकर उठने का अभ्यास लोगो को रहता है। चिकित्सक जल्दी सोकर जल्दी उठने की कोशिश करेगा। दिनभर मे लोग कुछ-न-कुछ बेसमय खाते ही रहते है, चिकित्सक के खाने के समय निश्चित होगे। अन्य समय वह मुँह मे खाने की कोई चीज नहीं डालेगा। चाय, तम्बाकू, पान-पट्टी, बीड़ी आदि का व्यसन तो उसे होगा ही नहीं, मिष्टान्न भी दरअसल चिकित्सक के लिए वर्ज्य ही समझा जाना चाहिए। लड्डू, पेड़े, बर्फी आदि मिष्टान्न प्राकृतिक चिकित्सा-शास्त्र की दृष्टि से पेट को बिगाड़नेवाली चीजे मानी जायँगी। लोगो को चबाये बिना खाने की आदत रहती है। चिकित्सक बराबर चबाकर ही हर चीज खायेगा। लोग प्रायः व्यायाम नहीं करते, वह बिना व्यायाम के भोजन नही करेगा। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए चिकित्सक बीच-बीच मे उपवास करेगा। लोग अक्सर बीमार हो जाते है, चिकित्सक बीमार कभी नहीं पड़ेगा। बीमार न होने में उसका रेकर्ड रहेगा। भावार्थ यह कि समाज के कल्याण की दृष्टि से जो-जो चीजे हम समाज मे दाखिल करना चाहते हैं, वे सब चिकित्सक के आचरण मे होना जरूरी हैं। आजकल आचरणशून्य प्रचार समाज मे काफी दिखाई पड़ता है। मगर वह दरअसल निष्फल होने से आचरण ही को प्रचार का मुख्य साधन समझकर निसर्गोपचारक अपने आचरण से समाज मे प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार करने की कोशिश करेगा। इस प्रकार का प्रचार मन्दगतिवाला दीखेगा। पर सच्चा प्रचार यही होने से चिकित्सक उसे छोड़ेगा नहीं, उसी पर वह सन्तुष्ट रहेगा।

५. निरहंकारिता

निरहंकारिता, नम्रता और सेवा-भाव, यह पाँचवाँ गुण चिकित्सक में होना चाहिए। जो निरहंकारी हो गया, उसके पास नम्रता और सेवा-भाव अपने-आप आ जाते हैं। ज्ञानेश्वर महाराज लिखते हैं : "जो अपना बड़प्पन छोड देते हैं, अपनी विद्वत्ता भूल जाते हैं और जगत् के सामने नम्र होकर झुक जाते हैं, वे परमात्मा के नजदीक पहुँच जाते हैं।" महाराष्ट्र के सन्त तुकाराम महाराज लिखते हैं "जगत् के सामने जो नम्र हो गया, वह अनन्त परमात्मा को वश में कर लेता है।" आज समाज में सत्ता और सेवा का संघर्ष चल रहा है। काफी लोग सत्ता के भूखे रहते हैं, फूल जैसे पानी न मिलने पर सूख जाता है, वैसे ही सत्ता न मिलने पर ये सूख जाते हैं। निष्काम सेवा का आनन्द अनुभव में न आने से सेवा की बनिस्बत सत्ता का आकर्षण ज्यादा रहता है। सेवा के मुकाबले में सत्ता तुच्छ लगने के बजाय सत्ता के सामने सेवा तुच्छ हो जाती है। इसका कारण मन में रहा हुआ अभिमान है। चित्त अभिमानग्रस्त होता है और उसे पोषण मिले बिना सेवा प्रकट नहीं हो पाती। ऐसा पाया जाता है कि किसीको सेक्रेटरी, प्रेसीडेंट, व्यवस्थापक या ट्रस्टी नहीं बनाया जाता है, तो वे हतोत्साह हो जाते हैं। वे उत्साह से काम ही नहीं कर पाते। सत्ता प्राप्त न होने पर कई समर्थ लोग अपनी अलग पार्टी बना लेते हैं। इसका इलाज यही है कि अभिमान छोड़कर नम्र बना जाय। नम्र बनने पर तो सिर्फ सेवा का ही आकर्षण रहेगा। प्राकृतिक चिकित्सकों को एक साथ मिलकर काम करना है, इसलिए नम्रता और सत्ता-निरपेक्ष सेवा-भाव अपने में उन्हें विकसित करना चाहिए।

६. ईश्वर-श्रद्धा अथवा निष्ठा

गांधीजी का कहना था कि जिसके चित्त में ईश्वर के प्रति हमेशा ज्वलन्त श्रद्धा रहती हो, उसका शरीर हमेशा नीरोग रहेगा। रोग का आक्रमण कभी उस पर नहीं होगा और हो जाय, तो भी वह केवल रामनाम से रोग को हटा देगा। हमें इसका अनुभव लेना हो, तो अपने जीवन में ईश्वर-निष्ठा लानी होगी। हमें यदि पूर्ण संयमी और निर्विकारी बनना हो, तो ईश्वर-निष्ठा के बिना नहीं बन सकेंगे। इस पर एक प्रश्न खड़ा हो सकता है कि नास्तिक मनुष्य प्राकृतिक चिकित्सक बन सकता है या नहीं। नास्तिकता के साथ नैतिकता होने पर नास्तिक आदमी निसर्गोपचारक अवश्य हो सकेगा, मगर चित्त की पूरी शान्ति या पूर्ण निर्विकारता प्राप्त करनी हो, तो ईश्वर-निष्ठा आवश्यक मानी जायगी। सिर्फ नैतिकता से चित्त की व्याकुलता या विकार दूर नहीं हो सकते। चिकित्सक स्वयं परिपूर्ण स्वस्थ और निर्विकार न हो, तो रोगग्रस्तों को उससे मानसिक स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त नहीं होगा। मानसिक स्वास्थ्य पर बहुत अंश तक शारीरिक स्वास्थ्य निर्भर रहता है, यह सबको मालूम है। इसलिए चित्त की आत्यन्तिक स्वस्थता प्राप्त करने के लिए चिकित्सक को कोशिश करनी चाहिए। यह षड्विध साधन-सम्पत्ति और प्राकृतिक चिकित्सा का आनुभविक सूक्ष्म ज्ञान चिकित्सक के पास हो, तो वह प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार जनता में भलीभाँति कर सकेगा। ●●●

प्राकृतिक चिकित्सालय के संबंध में गांधीजी के विचार : ११ :

गांधीजी ने हमें जो पत्र लिखे हैं, उनमें जगह-जगह प्राकृतिक चिकित्सा सबंधी विचार व्यक्त किये गये हैं। वे हम यहाँ दे रहे हैं :

१ रोग को रोकना मुख्य बात है।

२ रोग को रोकने की कुञ्जी लोगा को हम दें, तो हमारा कार्य सम्पूर्णता को पहुँचा हुआ समझा जायगा।

३. घर-घर जाकर लोगों को स्वच्छता के नियम सिखायें, पाठशालाओं में जायँ और वहाँ सिखायें।

४. आरम्भ किया हुआ काम बिगडना नहीं चाहिए। वहाँ का काम इतना भारी समझता हूँ कि सिलसिला टूटने न पाये।

५ खूब आगे बढ़ने के लिए अक्षय संन्यास की आवश्यकता है।

६. अच्छा काम एक दिन में नहीं हो जाता, यह समझकर धीरज रखना चाहिए। लोग कभी तो मान ही जायेंगे, ऐसा समझकर अपना काम करते ही जायँ। सफाई मुख्य वस्तु है, क्योंकि उसमें बहुत-कुछ आ जाता है।

७. जो महान् काम यहाँ करना है, वह है उरुली का देह, मन और आत्मा का विकास करना। उरुली-कांचन इस काम को सिद्ध करे, तब हिन्दुस्तान के सात लाख देहात के बारे में आशा की जा सकती है।

८. उरुली-कांचन और हिन्दुस्तान के देहातों में नैसर्गिक उपचार का विकास करने का मेरा विचार तेजी से बढ़ रहा है।

९. उसमें व्यक्ति और समाज के शरीर, मन और आत्मा की सफाई और स्वास्थ्य का शिक्षण आ जाता है।

१०. नैसर्गिक उपचार में कंगालियत, अपराध करने की मनोवृत्ति, व्याज वसूली में लूटखोरी आदि सब सामाजिक रोग माने गये हैं, जिनका उपचार एक सच्चे निसर्गोपचारक द्वारा होने की जरूरत है। मुझे इस बात की चिन्ता नहीं है कि नैसर्गिक उपचारों की किताबों में आम तौर पर इन बातों का विचार रोग के रूप में नहीं किया जाता। मैं, और यदि चाहो तो हम जो अपने को हिन्दुस्तान के देहातो और शहरों में नैसर्गिक उपचार के ट्रस्टी मानते हैं, इनसे कम में सन्तोष नही कर सकते। इसलिए यदि समय-समय पर हम मोटापा या दूसरे रोगों का इलाज कर दे और साथ ही यह जानते हों कि वही-वही रोगी फिर-फिर उन्हीं रोगों के शिकार होकर हर साल हमारे पास आते रहेंगे, तो हमारे लिए समाधान नहीं रहेगा।

११. इस प्रकार के काम के लिए लंबे पाठ्यक्रमों की जरूरत नहीं। आजकल के सर्जनों, डॉक्टरो या हकीमों की जगह हमे नहीं लेनी है। हमारा काम दूसरे ही ढॉचे मे ढला है। इसमे मौलिक तालीम की जरूरत है। हमें मौलिक किताबे रचनी हैं, इसलिए उरुली मे एकाग्र होकर काम करना है।

१२. नैसर्गिक उपचार मे केवल शरीर ही नहीं, मन भी आ जाता है। मन को नीरोग रखने के लिए केवल 'रामनाम' ही है और जो यह उपचार करें, वे स्वयं विशुद्ध हों, श्रद्धावान् के भक्त हों। इसके बिना जो नैसर्गिक उपचार है, उसकी मेरे पास कोई कीमत नहीं।

१३. अस्पताल में गॉव के रोगी न आये, तो बाहर से ले सकते हैं। गाँव के रोगी को पहला स्थान मिलना चाहिए और उपचार का खर्च भी संस्था उठाये। बाहर के रोगी के लिए फीस रखी जाय। उपचार-पद्धति सभी के लिए सादी होगी।

१४. बाहर से कुछ सेवाभावी कार्यकर्ता हासिल करने होंगे। गॉव के नौकरों और बालकों को तैयार करना और शक्ति के अनुसार रोगी लेना। कार्यकर्ताओं के लिए आश्रम के नियमों का बन्धन रहेगा। नौकरों के लिए सौम्य नियम बनाना।

१५ अस्पताल के साधन बिल्कुल सादे हों, गॉव में ही तैयार कर सकें तो बहुत अच्छा। टब के तौर पर मिट्टी के पक्के कुण्डे भी काम में लाये जा सकते हैं। शायद टिन के टब भी बनाये जा सकते हैं। सोने के लिए ईंट के चारपाये बनाकर ऊपर से तख्त रख सकते हैं।

१६ चाय के बदले काढ़ा दिया जा सकता है। गेहूँ की कॉफी तो चल ही सकती है। बीडी नहीं दे सकते। व्यसन के कारण लोग न आयें, तो चिन्ता नहीं करना है। लोगों को समझाना। क्षय, कुष्ठ रोग जैसे छूत रोगियों के लिए अलग प्रबन्ध हो सके, तो ले सकते हैं।

१७ गाय का दूध भी दे सकने की व्यवस्था रखना। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए ज्यादा खर्च करने की जरूरत लगे, तो करना। हरएक आश्रमवासी को कम-से-कम सात घण्टे काम करना चाहिए। अलग से रसोई करने की छूट देना मुझे पसन्द नहीं।

१८ ऐसा करते-करते कहीं युनिवर्सिटी होनेवाली होगी, तो होगी। मैं उसकी आशा नहीं करता। आदमी ही अपने पास कहाँ हैं ? न तो नैसर्गिक उपचार की शाला है, न कोई कॉलेज, इनके बिना युनिवर्सिटी कैसे हो सकती है ?

१९ नैसर्गिक उपचारवाला कोई आदमी हमको बाहर से मिल जाय, ऐसी आशा मत रखना। आश्रम की मर्यादा में न रहनेवाला कोई उपचारक मिले, तो उसे मैं अपने काम का नहीं मानूँगा।

उरुली के कार्य के संबंध में

२०. इसके अनुसार उरुली-कांचन के कार्यकर्ताओं को गाँव की गलियों को साफ करने तथा गाँववालों के शारीरिक रोगों की मिट्टी, धूप, आकाश, प्रकाश और पानी के ज्ञानपूर्वक उपयोग द्वारा चिकित्सा करने के उपरान्त आम लोगों की कंगालियत, गारुड़ी जाति के—जिसे कानून में हिन्दुस्तान की जरायमपेशा जातियों में शुमार किया गया है—तरफ भी ध्यान देना है।

२१. उरुली-कांचन के कार्यकर्ता, जैसा कि मैंने ऊपर बताया है, वैसा कुछ काम कर रहे हैं; लेकिन पद्धतिपूर्वक नहीं। अब उनको कुशल कार्यकर्ता बनना है और बाद में उनकी जगह ले सकने योग्य स्थानीय कार्यकर्ता तैयार करने हैं। इसके बिना उनको सन्तोष नहीं मानना चाहिए।

२२. नैसर्गिक उपचार, ग्राम-सेवा और आश्रम, ये तीन विभाग मुझे ठीक लगते हैं। नैसर्गिक उपचार की दृष्टि से ये अविभाज्य हैं। नैसर्गिक उपचार की पराकाष्ठा को पहुँचे कि ग्राम-सेवा आ ही जाती है। और बिना आश्रम-जीवन गाँवों के लिए नैसर्गिक उपचार की तो मैं कल्पना ही नहीं कर सकता।

२३. उरुली का काम चाहे जितना धीमे चले, लेकिन चौकस रूप से चलता रहे, तो उसे मैं अच्छा ही कहूँगा।

अब सुनिये रामनाम-विचार।

●●●

विनोबाजी के प्राकृतिक चिकित्सा-संबंधी विचार : १२ :

एक सज्जन ने प्राकृतिक चिकित्सा के विषय मे अपना अविश्वास इस प्रकार व्यक्त किया है "प्राकृतिक चिकित्सा 'प्रतिवधक इलाज के तौर पर ठीक है, लेकिन रोग के निराकरणार्थ उसका विशेष उपयोग नहीं दीखता।

यह प्राकृतिक चिकित्सा पर विश्वास है या अविश्वास, -यही मेरे सामने सवाल है।

प्रतिबधक इलाज के मानी हैं, रोग न होने देना, जिसको वेदों में 'इष्कृति' कहा है और रोग के निवारण-कार्य को 'निष्कृति'। निष्कृति की तुलना में 'इष्कृति' श्रेष्ठ है, यह विचार सर्वमान्य ही है। इस तरह प्राकृतिक चिकित्सा को 'इष्कृति' साधक माननेवालों ने उसे एक रुपये मे से दस आने कीमत तो दे दी, ऐसा ही मानना होगा। बची हुई छह आने कीमत निष्कृति को मिली। पर यह प्राकृतिक चिकित्सा को नहीं दी जा सकती, इतना ही उक्त सज्जन का निवेदन है। अब उसका भी कुछ विश्लेपण करें।

रोग की तीन अवस्थाएँ मानी जाती हैं। पहली, बीच की और अन्तिम। पहली अवस्था मे रोगी को औपधोपचार एकदम शुरू न करके फलाहार, उपवास आदि पर उसे रखा जाय। ऐसा करीब-करीब सभी औपध-पन्थी मानते हैं। आयुर्वेद ने तो ऐसा विधान ही किया है। लेकिन यह सही है कि इन दिनों रोगी को देखते ही डॉक्टर दवाई शुरू कर देते है। परन्तु उनका भी वह शास्त्र नहीं है। उनका वह व्यावसायिक विचार है।

आज स्थिति यह है कि रोगी को तुरन्त दवाई न देना, याने ग्राहक को खो देना। इसलिए डॉक्टरों को वैसा करना पड़ता है। और इसीलिए वैद्य भी आजकल ऐसा करने लगे हैं। लेकिन औषधि-शास्त्र रोगी को दो-चार दिन तो प्रकृति पर ही छोड़ देने का विचार अधिक पसन्द करेगा। उससे रोगी का योग्य निदान होगा और औषधोपचार भी ठीक से हो सकता है। अन्यथा, पहले दिन मलेरिया समझकर किनाइन दे देना और दो दिन के बाद टायफॉइड समझकर उपचार करना, ऐसे सारे प्रयोग आज चलते हैं। रोगी को मरना नहीं है, इसलिए उसमें से वह बच जाता है, इतना ही उसका अर्थ है। मतलब यह कि रोगी की तीन अवस्थाओं में से पहली में निर्विवाद रूप से प्राकृतिक चिकित्सा अब पा लेती है। इसका अर्थ हुआ, निष्कृति के छह आने में से दो आने प्राकृतिक चिकित्सा के पल्ले और पड़े।

अब हम रोगी की अन्तिम अवस्था का विचार करें। इस अवस्था में रोगी बहुधा यमालय की तरफ जाने के मार्ग पर होता है। उस हालत में यम से छुटकारा पाने के लिए जो औषध प्रयुक्त किये जाते हैं, वे अक्सर जालिम ही होते हैं। ऐसे उपचारों को 'यमदूत' ही समझना चाहिए। उनसे रोगी की वेदना बढ़ती है। हमारी देह भली-चंगी हो जायगी, इस भ्रम में रोगी रहता है और मानसिक अशांति में ही मृत्यु होती है। इसके बदले 'विश्व भेषज' माना हुआ जल, रामनाम इत्यादि उपचार जारी रखकर रोगी की वृत्ति अन्तर्मुख की जाय, तो उसको शान्ति मरण आ सकता है। शांतिपूर्वक प्राप्त मृत्यु उपचार का अपयश नहीं, उत्तम यश है।

लेकिन प्रारब्ध बचा हो, तो मौके पर अन्तिम अवस्था का रोगी भी जी जा सकता है। और वैसा जीना हो, तो प्राकृतिक चिकित्सा से ही वह जी सकता है।

अन्तिम अवस्था का यह विश्लेपण यदि सही हो, तो कहना होगा कि प्राकृतिक चिकित्सा ने दो आने और कमा लिये।

अव रोगी की बीच की अवस्था का, याने दो आने का हिसाब बचा। इन दो आनों पर अनेक चिकित्सापन्थी अपना-अपना अधिकार बतायेंगे, यह स्वीकार करना लाजिमी है। "दूसरी किसी भी चिकित्सा से अच्छे न हुए रोगी हमारी चिकित्सा से ही अच्छे हुए हैं" ऐसा दावा भी हर चिकित्सा-पंथी करता रहता है, और ईश्वर-कृपा से उसका वह दावा झूठा भी साबित नहीं होता। मानव-शरीर का और उसके भीतर की छोटी-मोटी क्रियाओं का पूर्ण ज्ञान हमको अब तक भी नहीं हुआ है, न अभी भिन्न-भिन्न औषधियों की शक्ति का और आहार्य पदार्थों के गुण-धर्म का ही पूर्ण ज्ञान हमको प्राप्त हुआ है। रोगी का पूर्वेतिहास, उसकी मानसिक दशा, रोगकारक परिस्थितियाँ आदि का भी पूर्ण ज्ञान अभी हमको नहीं हुआ है। ऐसी हालत में किसी भी चिकित्सा-पद्धति द्वारा बीच की अवस्था में जो रोगी चंगे हो जाते है, उनमें मुझे तो ईश्वरीय कृपा ही दीखती है। तथापि उन-उन चिकित्सा-पन्थों का उतना गुण मान्य किया जाय, तो भी वह सिर्फ एक ही चिकित्सा-पन्थ के पल्ले नहीं पड़ सकता। यह मानना होगा कि सभी के हिस्से में वह गुण आ सकता है और रोगियों ने यह मंजूर भी किया है, क्योंकि सभी के हिस्से में कोई-न-कोई रोगी आता है और कोई-न-कोई अच्छा हो जाता है।

चिकित्सा-पद्धतियाँ तीन तरह की दीखती हैं: एक सम, दूसरी विषम और तीसरी प्राकृतिक चिकित्सा। बचे हुए दो आनों का बँटवारा इन तीनों पद्धतियों में करना हो, तो किसके हिस्से में कितना भाग आयेगा,- इसे मेरे जैसा अ-कोविद तय करे, यह तो अन्याय होगा। अत मैं उस झंझट में नहीं पड़ता।

पर मैं इतना जरूर कहता हूँ कि इसमें से एक-आध पाई भी क्यों न हो, प्राकृतिक चिकित्सा के पल्ले डालनी होगी।

लेकिन जिन सज्जन का प्राकृतिक चिकित्सा पर अविश्वास है, वे इस एक पाई को भी इनकार कर देंगे, यह स्पष्ट है।

जो पूरा रुपया ही लेते हुए दीखते थे, वे यदि चौदह आने छोड़ देने के लिए राजी हुए हैं, तो शेष दो आने के एक हिस्से के लिए ही क्यों उनसे वाद करने बैठें।

सर्वोदय तथा भूदान-साहित्य

(विनोबा)

पुस्तक	रु० नये पैसे
गीता-प्रवचन	१—०
शिक्षण विचार	१-५०
कार्यकर्ता-पाथेय	०-५०
त्रिवेणी	०-५०
भगवान् के दरबार में	०-१३
साहित्यिकों से	०-५०
सर्वोदय के आधार	०-२५
ज्ञानदेव-चिन्तनिका	१—०
भूदान-गगा (६ खण्डों में)	९—०
जनक्रान्ति की दिशा में	०-२५
ग्रामदान	०-७५
अम्बर चरखा	०-१३

(धीरेन्द्र मजूमदार)

पुस्तक	रु० नये पैसे
शासनमुक्त समाज की ओर	०-५०
नयी तालीम	०-५०
ग्रामराज	०-२५

(श्रीकृष्णदास जाजू)

पुस्तक	रु० नये पैसे
सम्पत्तिदान-यज्ञ	०-५०
व्यवहार-शुद्धि	०-३८

(दादा धर्माधिकारी)

पुस्तक	रु० नये पैसे
सर्वोदय-दर्शन	३—०
मानवीय क्रान्ति	०-२५
साम्ययोग की राह पर	०-२५
क्रान्ति का अगला कदम	०-२५

(अन्य लेखक)

पुस्तक	रु० नये पैसे
छात्रों के बीच	०-३१
सर्वोदय का इतिहास	०-२५

पुस्तक	रु० नये पैसे
श्रम-दान	०-२५
विनोबा के साथ	१—०
पावन-प्रसग	०-५०
भूदान-आरोहण	०-५०
भूदान-यज्ञ : क्या और क्यों ?	१—०
भूदान-गगोत्री	२-५०
क्रान्ति की पुकार	०-२५
गो-सेवा की विचारधारा	०-५०
नये अंकुर	०-२५
गाँव का गोकुल	०-२५
ब्याज-बट्टा	०-२५
पूर्व-बुनियादी	०-५०
सुन्दरपुर की पाठशाला	०-७५
सत्सग	०-५०
राजनीतिसे लोकनीतिकी ओर	०-५०
आज का धर्म	०-५०
विनोबा-सवाद	०-३८
नक्षत्रों की छाया में	१-५०
सर्वोदय-सयोजन	१—०
नवभारत	४—०
सत्याग्रही शक्ति	०-३१
गाँव-आन्दोलन क्यों ?	२-५०
ताई की कहानियाँ	०-२५
दादा का स्नेह-दर्शन	०-२५
सत्य की खोज	१-५०
चिंतन के क्षणों में	०-५०
सपूत (नाटक)	०-३७